लेखक की विनय ।

यह तीनों लेख जो पुस्तकाकार आज पाठकों की सेवा में अर्पण कर रहा हूं, हिन्दीके प्रसिद्ध मासिक पत्रों में निकल चुके हैं। इन्हें पुस्तकाकार छपाने से मेरा यह अभिप्राय है कि यह विवाद बहुत पुराना है बारंबार शांत होते हुए भी इसमें शाखायें निकल ही आया करती हैं, इससे यदि ये लेख पुस्तकाकार हर एक ज्ञाता पुरुषोंके समीप रहेंगे तो आगे फिर कभी ऐसा ही विवाद उठने पर ये बड़े काम आवेंगे, क्योंकि इतना साहित्य बारंबार एकत्र न हो सकेगा और न काम पड़ने पर पत्रों के अंक ही मिलेंगे। फिर केवल इसी लिए यह पुस्तक नहीं छापी गई है, संप्रदाइयों को संप्रदाई और साहित्य सेवियों को ऐतिहासिक तथा साहित्य सम्बन्धी और भी बहुत सी बातें मिलने की आशा से भी मैंने ये प्रतिवाद पुस्तकाकार लिखे हैं।

लेखक—

श्रीगोपाल प्रसाद शर्म्मा।

॥ श्री श्रीराधावल्लभो जयति ॥

॥ श्री हित हरिवंश चन्द्रोजयति ॥

भ्रमोच्छेदन ।

सूरदासजी और गोस्वामी हितहरिवंशजी *

उपरोक्त नामका लेख जूनकी सरस्वतीमें निकला है। लिखने वाले कृष्णचन्द्र (१) गोस्वामी हैं। आप उस सम्प्रदायके गोस्वामी जान पड़ते हैं कि जिसमें उत्पन्न होकर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने यह कहाथा कि—

विश्वासे पाइवे तर्कें हय बहु दूर ॥

(चैतन्य चरितामृत बंगला)

किन्तु प्राचीन महानुभावोंकी वाणी खोजने में गोस्वामीजी ने अपने आचार्य्यके इस उपदेश पर कुछ ध्यान नहीं दियाहै, और उसी झगड़ेको साहित्य क्षेत्रमें

* इन्दु मासिक पत्र काशी कला ५ खण्ड २ किरण ३ सितम्बर १९१४ भाद्रपद १९७१ पृष्ट १७२ से।

उपस्थित किया है कि जिसके कारण श्रीवृन्दावन में श्री राधावल्लभी और श्रीराधारमणी गोस्वामियों में नित्य नये कलह होते रहते हैं ।

आजकल समालोचना के द्वारा साहित्यके अंग की पूर्ति करनेकी बात बहुत अच्छी है । यदि समालोचक उच्चनीच का विचार करके समता से उदार और पक्षपात रहित समालोचना करें तो यथार्थ में साहित्य उच्चकोटि को पहुंच सक्ता है, पर जो समालोचना अहङ्कार, द्रोह, मत्सर .दंभ और अज्ञान से की जाती है, वह अनधिकार चरचा सी होती है । उससे साहित्य की हानि के सिवाय लाभकी कोई आशा नहीं होती । फिर प्राचीन महानुभावों की वाणीकी आलोचना तो समालोचक सज्जनों को बड़े ही विचार से करनी चाहिये क्योंकि समालोचना यदि यथार्थ नहो तो साहित्य की हानि तो होती ही है, साथही धर्म्म संबन्ध होनेसे उस समालोचना से देशमें द्रोह फैलने का भी भय होता है । इसलिये संपूर्ण साहित्य सेवियोंसे मेरी प्रार्थना है कि जबतक प्राचीन महानुभावों की प्राचीन लिखी हुई वाणियों का और उनके चरित्र संबंधका पूरा २ अनुसन्धान न करलें तबतक प्राचीन महानुभावों की आलोचना करने को लेखनी न उठावें,—क्यों कि इस हठीले साहस से बड़ाही अमंगल होता है ।

अब मैं गोस्वामीजी के लेख पर अपना विचार प्रगट करताहूं। इसको पढ़कर पाठक सज्जन ही विचार करें कि गोस्वामीजी ने उपरोक्त दोनों महात्माओं की आलोचना करनें में कहांतक भूल की है।

गोस्वामीजी के लेखका सारांश यह है कि "आचार्य्य वर गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजीके चौरासी पदों में कई पद श्रीसूरदासजी के पदों में सें बना लिये गये हैं। वे श्रीहितहरिवंशजी के बनाये हुए नहीं हैं। क्यों कि सूरदासजी की प्रतिभा बलवान थी और वे श्रीहितहरिवंसजी सें प्रथम हुए थे।"

॥ श्रीसूरदासजी के ग्रंथ ॥

उपरोक्त अपने लेखकी पुष्टि करनेको और परस्पर सम्बन्ध दिखानेको गोस्वामीजी ने सूर संगीतसार पुस्तक का आश्रय लिया है। किन्तु जिन सात पुस्तकों को आप "सूरदासजीके ग्रंथ आजकल मिलते हैं" यह कहके उन्हें प्रमाण मानते हैं, उनमें सूरसागर, सूर-सारावली, व्याहलो, साहित्य लहरी और नलदमयंती यह पांच ग्रंथही ऐसे हैं कि जिनके आशय और नाम भिन्न भिन्न मालूम देते हैं। इससें अवश्य वे सूरदास जी के बनाये हुए होंगे। पर सूरसागरसार और सूरसंगीत-सार तो आशय और नामके विचारने सें आधुनिक ही जान पड़ते हैं क्योंकि जब सूरसारावली सूरदासजी की

बनाई हुई है तो फिर एकही आशय की दो २ पुस्तक सूरसागरसार और सूरसङ्गीतसार बनाने की उन महात्मा प्रज्ञा चक्षु को कोई आवश्यक्ता नहीं थी।

सूरसारावली यथार्थ में सूरदासजी की बनाई हुई है। क्योंकि स्वयं सूरदासजी उस पुस्तक के अन्तमें लिखते हैं कि—"ता दिनतें हरि लीला गाई, एक लक्ष पदं वंद, ताको सार सूरसारावलि, गावत अति आनंद" यह एक काफी राग में ही समाप्त हुई है। उसमें फुटकर पद नहीं हैं।

फिर सूरसंगीतसार का अप्रमाणिक होना इससे और भी सिद्ध है कि सूरदासजी ने और सूरदासजी के प्रमाणिक जीवन चरित्र लिखनेवालों नें कहींभी इस पुस्तक का नाम नहीं लिया है।

यदि किसी और नें सूरसागर सें या जनश्रुति सें सूरसंगीतसार संग्रह किया हो तो संभव हो सक्ता है किन्तु लिपि और जन श्रुति में दोष होना कोई असंभव बात नहीं है। जब आजकल अनुवादक अनुवाद करके स्वयं लेखक बन जाते हैं, पेट और प्रतिष्ठा के लिये लोग संप्रदाय बदल डालते हैं तो सैकड़ों वर्ष के पदों में भूल सें वा मत्सरता सें फेरफार हो जाना कोई असंभव बात नहीं है। सूरसंगीतसार जैसे कल्पित ग्रन्थको प्रमाण मान के साहित्य क्षेत्र में उतर पड़ना गोस्वामी जी को

शोभा नहीं देता है। यदि आपको उदारभाव से आलो-
चना करनी थी तो सूर दासजी के बनाये हुए प्रामाणिक
किसी प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ की खोज करके तब
उससे चौरासी पदों का संबंध दिखाना था।

॥ श्रीहित हरिवंशजी के ग्रंथ ॥

हर्षका स्थान है कि श्रीहितहरिवंशजी की चौरासी-
पद पुस्तक गोस्वामी जी को दोष निकालने के लिये
प्राप्त हो गई। यदि गोस्वामीजी विचारके साथ और
आगें बढ़ते तो "चौरासी पद" की आठ टीकाएं भी
अच्छे २ विद्वानोंकी की हुई, सैंकड़ों वर्ष की हस्त
लिखित, वहीं, श्री वृन्दावन में आपको मिल सक्ती थीं।
जिनसे आपको जो संबंध और छंदो भंग का दोष दीख
रहा है वह भी दूर हो सक्ता था।

श्रीहित हरिवंशजी की दूसरी पुस्तक-"स्फुट पद"
के लिये आप. गोस्वामीजी ओड़छा और छतरपुर तक
गये हैं, तो भी शोक! ऐसे खोजी सज्जन को वहां भी
पुस्तक प्राप्त न हुई। पर इन खोजे हुए स्थानों से भी
सैंकड़ों कोस दूर दंडकारण्य में बसा हुआ मैं, गोस्वामी
जी से प्रार्थना करता हूं कि हे साहित्य सेवीजी? इतनी
दूर जाने की कोई आवश्यक्ता नहीं है। विचार पूर्वक
साहित्य दृष्टि से खोजिये तो जिन श्री वृन्दावन के
दो चार कीर्ति चिन्हों को हजारों रुपया लगाकर उद्धार

गवर्नमेण्ट ने मरम्मत कराई है, ' उन्हीं में श्रीहित हरिवंशजी का भी बनवाया हुआ एक मंदिर है । उसी के ओर पास श्रीहितकुल निवास करता है। वहीं आपको "स्फुटपद" बहुत पुराने हस्तलिखित पण्डित प्रियादास जी की टीका सहित मिल सक्ते हैं।

गोस्वामीजी ने चौरासी पद का प्रायः श्रीसूरदासजी के पद और स्फुट पद का न होना जैसे माना है, वैसे ही श्रीहित हरिवंशजी की तीसरी पुस्तक "श्री मद्राधासुधानिधि" को भी विवाद ग्रस्त बताया है, हम नहीं जानते कि गोस्वामीजी के हृदयमें एक आचार्य्यके प्रति ऐसी ओछी कल्पनाएं क्यों उदय हुई हैं ?

गोस्वामीजी । पश्चिमी विद्वान कारलाइल कहता है कि-"यदि तुम भगवत दत्त किसी बात को मनुष्यके लिये ला सक्ते हो तो साहित्य क्षेत्र में आओ ; नहीं इस पथमें न आओ" । श्रीहित हरिवंशजी ऐसे ही प्रतिभावान महात्मा हुए हैं । जिनकी वाणी को सुनकर लाखों जीव मुग्ध हुए थे, और हो रहे हैं । उनकी वाणी भगवत दत्त है । विवादग्रस्त नहीं है।

॥ पदों का सम्बन्ध ॥

गोस्वामीजी ने सूरसंगीतसार में चौरासी पदों का सम्बन्ध दरसाया है किन्तु जब सूरसंगीतसार ही प्राचीन और सूरदासजी की बनाई हुई नहीं हैं तो उनके पदों

का सम्बन्ध श्रीहित हरिवंशजी के बनाए प्राचीन ग्रंथ चौरासी पद से नहीं माना जा सक्ता है। यदि गोस्वामी जी की न्याईं उसे हम प्रमाण भी मान लें तो आगे समय निरणय करने में गोस्वामीजीने जो भूल की है उसे दिखा देने पर सूरसंगीत सारही में, चौरासी पदों में के पद आये हुए मालूम देंगे, क्योंकि गोस्वामीजी ने 'सरस्वती' में यही लिखा है कि जो आयु में बड़ा हो उसीके पद का सम्बन्ध छोटी आयु वाले के पदों में होगा।

॥ श्रीहित हरिवंशजी का जन्म समय ॥

महानुभाव श्रीहितहरिवंशजी के जन्म का निरणय गोस्वामीजी ने भगवत मुदित की रसिकमाल से किया है। आज प्रसंगवशात हमने भी सम्वत १८३० की लिखी हुई रसिकमाल प्राप्त की। उसमें "पंद्रह सौ उनसठ संवत्सर" ही जन्म काल लिखा हुआ है। पर गोस्वामी जी की न्यांईं केवल दोष दिखाने के लिये ही हमको पुस्तक नहीं देखनी थी, जब और आगे बढ़े तो जन्म से पैंतीस वर्ष पश्चात के चरित्र को वर्णन करते २ ग्रंथकार या लेखक ने रसिकमाल में ऐसा अंधेर मचाया है कि जिसको पढ़कर आश्चर्य ही होता है।

॥ चौपाई ॥

पंद्रह सौ बावन जु सुहायो ॥
कातिक सुदि तेरस सुख छायो ॥

पट्ट महोत्सव तादिन कीन्हों ॥

रसिकमाल ॥

अर्थात् श्री हितहरिवंशजी ने पंद्रह सौ बावन में श्रीराधावल्लभ जी को मंदिर बनाके श्रीवृन्दावन में पधराये ।

अब विद्वान ही विचारें कि यह कितना बड़ा अंधेर है । जो कार्य्य श्री हितहरिवंश जी ने अपने जन्म से पैंतीस वर्ष पश्चात किया था उसी को इस पुस्तक में जन्म १५५९ से सात वर्ष पहिले १५५२ में ही कर लेना लिखा है । ऐसी अशुद्धियों को लेकर के ही गोस्वामी जी ने प्राचीन महानुभावका समय निरणय किया है। किन्तु हमने जब उसके शोधित अंश पर दृष्टि डाली तो सब संशय दूर हो गया । शोधन करनेवालेने पुस्तक में अशुद्धि को काटकर जन्म की पत्रिका को इस प्रकार लिखा है कि—

॥ चौपाई ॥

पंद्रह सौ त्रिंशत सम्वत्सर ।

माधव शुक्ला ग्यास सोमवर ॥

॥ दोहा ॥

तहां प्रगटे हरिवंश हित रसिक मुकुट मणि माल ॥

और इसी की पुष्टि गोस्वामी श्री कृष्णचन्द्र जी प्राचीन महात्माने भी की है ।

॥ श्लोकं ॥

वियद् गुणेषु शुभ्रांशु संख्ये १५३० सम्वंत्सरे शुभे ॥
माधवे मासि शुक्लैकादश्यांच सोमवासरे ॥ १ ॥
गोस्वामी श्रीहरिवंशाख्य श्रीमन्माथुर मंडले ॥
वादग्रामे शुभस्थाने प्रादुर्भूतो महान्गुरुः ॥ २ ॥

इसी तरह पैंतीस वर्ष पश्चात का चरित्र पाट महोत्सव जो रसिकमालमें १५५२ लिखा हुआ है उसको शुद्ध करने वाले ने "पंद्रह सौ पैंसठ जु सुहायो" शुद्ध करके लिखा है। इससे सिद्ध हुआ कि १५३० जन्म और १५६५ पाट महोत्सव ही ठीक हैं।

इसके आगे १५५९ जन्म समय मानने वाले गोस्वामी जी और भी जानना चाहें तो अनन्य रसिक माल, श्रीहित हरिवंश वंश प्रशस्ति, श्रीहितमालिका, सुरत्नमणिमाला और श्रीहितामृत आदि ग्रंथों को प्राप्त करके जान सक्ते हैं। हमने यहां केवल उसी पुस्तक रसिकमाल से गोस्वामीजी को दोष दृष्टि दूर करने का प्रयत्न किया है।

॥ श्री सूरदास जी का जन्म समय ॥

श्री सूरदासजी का जीवन चरित्र महाराजा रघुराजसिंह अपनी बनाई राम रसिकावली भक्तमाल में इस प्रकार लिखते हैं और भक्त कल्पद्रुम में भी राजा प्रतापसिंहजी ने प्रायः यही लिखा है कि-"उद्धव के अवतार थे, नेत्र से हीन थे, स्त्री ने कहा सुभि सब अंधे को

थी कहते हैं। आपने आज्ञा दी, शृङ्गार करके सम्मुख आ, वह आई। आपने दिव्य दृष्टि से देखके कहा, वेंदी नहीं लगाई है स्त्री और सब चकित हुए। इसी समय आप त्यागी होकर श्री वृन्दावन आये। सवालक्ष पद बनाने का संकल्प था, पौन लाख बनाने पर शरीरांत हुआ। पचास हजार भगवान ने बनाये। उन सवालाख पदों में से सूरदास जी के बनाये हुए पदों में "सूरजदास, और सूरदास" और भगवान के बनाये पदो में" सूरश्याम की छाप है।"

इससें अनुमान होता है कि इन्द्रियों की तृप्ति हो जाने पर, भगवत सम्बन्धी भक्ति उदय होने से ३० या ३५ वर्ष की आयु में श्री वृन्दावन वास करके श्रीसूरदास जी ने पद बनाये होगे और ७० या ८० के बीच देहांत हो जाने पर केवल ७५ हजार ही पद बना सके होंगे। अब यदि गोस्वामी जी के लिखे हुए सं० १५४० को हम श्री सूरदास जी का जन्म काल मान लें तो १५७० या १५७५ सूरदास जी का भगवदीय पद बनाने का काल माना जा सता हैं। उस समय श्रीहित हरिवंश-जी का काव्य जगत प्रख्यात हो गया था, क्योंकि सं० १५६५ में मंदिर निरमाण होने से उनके पद ठाकुर जी के सम्मुख गाये जाते थे और चौरासी पद का पाठ उनकी संप्रदायके वैष्णव करने लगे थे।

जिस संप्रदाय के श्रीसूरदास जी शिष्य थे उसी श्रीवल्लभ-कुल संप्रदाय के परम भक्त भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी सूर-दासजी के जीवन चरित्र में लिखते हैं कि—"१५४० या न्यूनाधिक में उत्पन्न हुए थे। नल दमयन्ती आदि साधा-रण काव्य तो प्रथम से ही करते थे। पर श्री वल्लभाचार्य्य जी के शिष्य होने पर उन्होंने भगवदीय काव्य बनाना आरंभ किया" इसी बात को श्रीसूरदास जी भी सूरसा-रावली में स्वीकार करते हैं कि—

पद।

करम जोग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायो।
श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला भेद बतायो॥
तादिन तें हरि लीला गाई एक लक्ष पद बंद॥

इस भारतेन्दु जी के लेख को देखकर अब विचारना चाहिये कि सूरदास जी कब शिष्य हुए और उन्होंने पद बनाना कब आरंभ किया।

भारतेन्दु जी श्री वल्लभाचार्य्य जी के जीवन चरित्र में लिखते हैं कि १५३५ में उत्पन्न हुए १५४८ में पृथ्वी परिक्रमा आरंभ की। छः २ वर्ष में प्रत्येक परिक्रमा समाप्त करके तीसरी परिक्रमा के पश्चात ब्रज में निवास करने लगे। इस हिसाब से तीनों परिक्रमा के १८ वर्ष ४८ में जोड़ दें तो संवत १५६६ ब्रज निवास का काल श्री वल्लभाचार्य्य जी का जाना जाता है।

अब यदि १५६६ में श्री सूरदासजी का २६ वर्ष की अवस्था में शिष्य होना माना जावे तो साहित्य लहरी और नलदमयंती आदि साधारण काव्य, जो उन्होंने शिष्य होने से प्रथम ही बनाये हैं उनका उस अशांति मय समय में बना लेना असंभव मालूम देता है। फिर २६ वर्ष की आयु में शिष्य होना मान लेने से भक्तमाल के चरित्र में भी विरोध आता है। इसलिये ३० या ३५ वर्ष की अवस्था होने पर, साधारण काव्य बना लेने पर, कुछ इन्द्रियों के शिथिल होनेपर, ज्ञान होने के पश्चात् जब श्री बल्लभाचार्य्य जी नियमित रूप से व्रज में रहने लगे होंगे तब ही शिष्य होकर सं० ७० या ७५ में श्री सूरदास जी ने भगवदीय काव्य बनाना आरंभ किया होगा। भक्तमाल भी इसी बात को पुष्ट करती है। इस विचार से भी चौरासी पद श्री सूरदास जी से पहिले के है।

भारतेन्दु जी बड़े निष्पक्ष पाती थे। उनको संप्रदाई हठ नहीं था। वे गोस्वामी जी की न्याईं केवल दोष दिखाने को ही, निर्भय चाहे जहां का लिखा हुआ संवत देख कर नहीं लिख देते थे। जब बादशाह के यहां सूरदास जी और तुलसीदास जी के मिलने का वर्णन उन्होंने जन श्रुति से सुना और भक्त मालादि पुस्तकों में पढ़ा, तो सूरदास जी के जन्म कालके आगे

"या न्यूनाधिक" यह भी शब्द उन्होंने लगा दिया है। तुलसीदासजी की प्रख्याति का काल १६३० से ऊपर अनुमान से जाना जाता है, क्योंकि १६८० में तो वे साकेत धाम को ही चले गये थे। सूरदासजी का जन्म १५४० मान लेने से तुलसीदास जी की प्रख्याति के समय १६३० में उनकी आयु ९० वर्ष की होती है। पर भारतेन्दु जी ने श्री सूरदास जी की आयु ८० वर्ष की लिखी है। इस अस्सी को १५५० में जोड़ने से १६३० में तुलसीदासजी का मिलाप संभव हो सक्ता है। इसलिये ९० की आयु और ४० का जन्म दोनों ही असंभव मालूम देते हैं पर इसी हिसाब से १५५० का जन्म मानने पर ३० या ३५ की आयु के समय संवत ८० या ८५ में शिष्य होकर पद बनाने का आरंभ माना जा सक्ता है। और इसी झगड़े को सोचकर भारतेन्दुजी ने भी न्यूनाधिक शब्द लिखा है।

अब विद्वान पाठक ही विचारें कि गोस्वामीजी का लिखना कहाँतक संगत है। अन्तिम हिसाब से तो सूरदास जी का समय बहुत ही पीछे आता है। जब चौरासी पद के बनाने वाले बीस वर्ष के हो गये होंगे तब सूरदासजी का जन्म हुआ होगा और जब सूरदास जी शिष्य होकर पद बनाते होंगे, उससे २५ वर्ष प्रथम ही चौरासी पद मंदिरों में गाये जाते होंगे।

॥ मेरी संमति ॥

कृष्ण चैतन्य गोस्वामी जी आचार्य्य हैं, विद्वान हैं, साहित्य क्षेत्र में आधुनिक ग्रन्थ और अशुद्ध जन्म तिथियों को लेकर वे महानुभावों में से एक को छोटा एक को बड़ा बनाने के लिये आ सके हैं; पर मैं क्षुद्रबुद्धि होकर भी ऐसा साहस नहीं कर सक्ता हूं। कोई भी विद्वान मेरे उपरोक्त लेख को देखकर यह न समझे कि मैंने इस लेख में उच्च नीच का विचार किया है। नहीं, सज्जनों! यह दोनों ही महात्मा मेरे दोनों नेत्र के तारे हैं; मैं यह जानता हूं कि मेरी असावधानी से यदि एक नेत्र में चोट लगेगी तो मेरे दोनों नेत्र किसी काम के न रहेंगे। इससे मैंने दोनों महात्माओं में कहीं भी भेद बुद्धि नहीं की है। यहां जो कुछ लिखा है, वह गोस्वामीजी को विषाद दृष्टि काही अञ्जन है।

अब जिन चौरासी पदों के तीन पदों का सरस्वती में गोस्वामीजी ने सूर संगीतसार से संबंध बताया है उनके विषय में मेरा मत है कि वे श्री हितहरिवंश जी के ही बनाये हुए हैं। आजकल के किसी संग्रह कर्ता से भूल से या मत्सरता से सूरसंगीतसार में उन पदों को रखकर सूरदासजी का नाम लिख दिया है क्योंकि न तो श्रीहितहरिवंशजी ही ऐसे प्रतिभा हीन थे जो दूसरे के पदों को अपने बना लेने की कांक्षा कर

सक्ते थे और न सूरदास जी की ही बुद्धि इतनी संकु-
चित थी जो वे चौरासी पदों का आश्रय लेने को तत्पर
हो सक्ते थे जिनका ब्रज भाषा के काव्य से कुछ भी संबं-
ध है वे जान सक्ते हैं कि श्रीहितहरिवंशजी के काव्य
में कैसा उच्च कोटि का शृंगार है। उसी उच्च कोटि का
श्रीसूरदासजी का वात्सल्य भी है। सरस्वती में दिये
हुए शृंगार के हैं और वे चौरासीजी के हैं। भूल से
संग्रह कर्ता ने उन्हें श्रीसूरदासजी के बना दिये हैं।

फिर दोनों महात्माओं के पद की शृंखला भी वि-
चारवान विचार करने पर स्पष्ट जान सक्ते हैं कि जिस
प्रकार आजकल भाषा को ललित करने के लिये और
देववाणी संस्कृत की ओर प्रीति उत्पन्न करने के लिये
खड़ी बोली के कवि संस्कृत शब्द का उपयोग अपने
काव्य में लाया करते हैं, इसी प्रकार श्रीहितहरिवंश
जी ने अपने ब्रजभाषा के काव्य में समयानुसार देववाणी
संस्कृत का उपयोग विशेष किया है। उधर सूरदासजी
ने जहां तक होसका संस्कृत के परम विद्वान होने पर
भी संस्कृत शब्दों को बचाकर ठेठ ब्रज भाषा में अपने
पदों को बनाया है। इस विचार से भी संस्कृत मिश्रित
होने से सरस्वती के तीनों पद श्रीचौरासीजी के ही जान
पड़ते है।

उपरोक्त मेरे इस विचार को पुष्ट करने के लिये मैं

न्दु के उन पाठकों के सन्मुख जिन्होंने दोनों महात्माओं के शुद्ध पदों को नहीं देखा है, दो २ पद परीक्षा के लिये प्रगट करता हूं। आशा है इनको विचार करके भाषा की शैली और रस का निर्णय करकें पाठक निश्चय करें कि सूरसंगीतसार के संग्रह कर्ता और मानने वाले ने कितनी भूल की है। और सरस्वती में दिये हुए पद किन महात्मा के हैं। किन्तु भय यही है कि गोस्वामीजी ऐसे महात्मा इन्हें भी कहीं सूर संगीतसार के न बता दें।.

चौरासी पद। छंद चारि शृंगार।

मोहन मदन त्रिभंगी॥ मोहन मुनि मन रंगी॥
मोहन मुनि सघन प्रगट परमानंद गुण गंभीर गुपाला।
शीस किरीट श्रवण मणि कुण्डल परि मंडित वनमाला॥
पीतांवर तन धात विचित्रित कल किंकिनि कटि चंगी।
नख मनि तरुन चरण सरसीरुह मोहन मदन त्रिभंगी॥१॥

मोहन वेनु बजावै इहि रविनारि बुलावै॥
आई व्रजनार सुनत वंसीरव ग्रह पति वंधु विसारें॥
दरसन मदन गुपाल मनोहर मनसिज ताप निवारें॥
हर्षित वदन वंक अवलोकन सरस मधुर धुनि गावे॥
मधुपय श्याम समान अधर धरें मोहन वेनु वजावे॥२॥

रास रच्यौ बन मांहीं॥ विमल कल्पतरु छांहीं॥
विमल कलपतरु तीर सुपेसल शरद रैन वर चंदा॥

शीतल मंद सुगंध पवन वहै जहां खेलत नदनंदा ॥
अद्भुत ताल मृदंग मनोहर किंकिनि शब्द करांही ॥
जमुना पुलिन रसिक रस सागर रास रच्यौ बन मांही॥३॥
देखत मधुकर केली ॥ मोहे खग मृग वेली ॥
मोहे मृग धेनु सहित सुर सुन्दर प्रेम मगन पट छूटे ॥
उड़गन चकित थकित शशि मंडल कोट मदन मनलूटे॥
अधर पान परिरंभन अति रस आनंद मग्न सहेली ॥
जय श्रीहितहरिवंश रसिक सचुपावत देखत
मधु करकेली ॥ ४ ॥

सूर सागर शृंगार ॥

हौं बलि २ जाऊं छबीले लाल की ।
धूसर धूरि घुटुरुन डोलनि बोलन वचन रसाल की ॥
छिटकि रही चहुं दिशि जुलटुरियां लटकनि लटकन
भाल की ॥
मोतिन सहित नासका नथुनी कंठ कमलदल माल की ॥
कछु इक हाथ कछुक मुख माखन चितवत नैन विशालकी ।
सूरदास प्रभु प्रेम मगन ह्वै ढिंग न तजत है ग्वाल की ॥१॥

स्फुट पद सिद्धांत छप्पै ॥

तें भाजन कनक जटित विमल चंदन कृत इंधन ॥
अमृत पूरि तिहि मध्य करत सरिसप खल रिंधन ॥
अद्भुत धर पर करत काष्ट कंचन हल वाहत ॥
वार करत जु येवार मंद बोवन विष चाहत ॥

जय श्रीहितहरिवंश विचार कें मनजू देहु गुरु
चरण गहि ॥
सकहिं तो सब परपंच तजि कृष्ण कृष्ण गोविंद कहि ॥

सूर सागर सिद्धांत ॥

इते दिन हरि सुमरन बिन खोये ॥
पर निंदा रसना के रस में अपने करतल बोये ॥
विविधि रुचिर अंग अङ्गद मरदन बसन बनाये धोये ॥
तिलक लगाय चले स्वामी ह्वै विषइन के मुख जोये ॥
सब जग कंपत काल व्याल डर सुर ब्रह्मादिक रोये ॥
सूर अधम की होत कौन गति उदर भरे अरु सोये ॥

——:०:——

"श्रीमद्राधा सुधानिधि" पर मेरे स्वतंत्र विचार ।

(ले० पं० गोपाल प्रसाद शर्म्मा)

बंगला साहित्य आज कल बड़ी उन्नति पर है। इसी से उसके साहित्य की उन्नति का प्रवाह भी कई ओर को बहता चला जा रहा है। बंगला में नये २ ग्रन्थकार तो उत्पन्न होते ही हैं किन्तु इसी के साथ ही उस भाषा में ऐसे समालोचकों का भी अभाव नहीं है कि जो अपने साहित्य को हर प्रकार से संपन्न करने में किसी भी

प्रकार का संकोच नहीं करते हैं । इन समालोचकों में एक तो वे उदार प्रकृति के सज्जन हैं कि जो अपने मासिक पत्र में मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं कि "जिस बंगला साहित्य को हम प्राचीन और उच्च कोटिका गिनते हैं, उसका भाव प्रभाव पश्चिम से आया है"। इसी को पांचकोड़ी वंदोपाध्याय ने स्पष्ट करके कहा है कि "सूरदास, श्यामदास और तुलसीदास के हिन्दी महा काव्य पढ़कर चंडीदास, ज्ञानदास, मुकुंददास आदि के पद देखने पर जान पड़ता है कि-मानों हम बंगला में हिन्दी की प्रति ध्वनि सुन रहे हैं।" दूसरे प्रकार के वे समालोचक भी अनुदार नहीं हैं कि जो दूसरों को अपना बनाकर उसके साहित्य को अपने देश और भाषा का बना लेने में कोई संकोच नहीं करते हैं क्योंकि, अपने गौरव की वृद्धि के लिये यदि कोई मनुष्य किसी पूज्य विद्वान को अपना बना लेवे तो इसमें इसकी शोभा ही है । तीसरे प्रकार के उन समालोचकों का भी बंगला में अभाव नहीं है कि जिनके विषय में एक इङ्गरेज़ ने कहा है कि-"वास्तविक वह पक्का चोर है, जो दूसरे का सोना लेकर उसी समय उसी स्वरूप से बाज़ार में प्रगट नहीं करता है । वह उस सोने को अनेक प्रकार की चीजे, बनाकर उन्हें अपनी ही बताकर जन समाज में चलाने की चेष्टा करता है।" चौथे प्रकार

का और भी एक भेद समालोचकों का बंगला में है कि जो मत्सरता और ईर्षा के परवस होकर बिना किसी प्रबल युक्ति और प्रमाण के दूसरों के ग्रन्थ के ग्रन्थ अपने बनाडालने में कुछ भी लज्जा नहीं करता है। इन समालोचकों द्वारा बंग भाषा इतनी उच्च कोटि को पहुंच गई है कि भारत की उन्नति शील भाषाओं में इङ्गरेजी के पश्चात बंगला को ही प्रथम नम्बर दिया जाता है। फिर श्रीयुत बंकिम चन्द्र, रमेशचन्द्र, रवीन्द्रनाथ आदि सज्जनों ने तो बंगला का ऐसा मुख उज्वल किया है कि आज पश्चिमी दुनियां भी उसे देखकर चकित हो रही है।

ऐसी उन्नति शील भाषा के विवाद ग्रस्त ग्रंथों के विषय में यद्यपि साधारण पुरुषों का बोलने का काम नहीं है किन्तु संस्कृत, ब्रज भाषा और हिन्दी इन तीनों से देश काल के कारण मेरा संबंध है। इसलिये एक बंगला विवादग्रस्त ग्रंथ पर मैं अपने विचार प्रगट किया चाहता हूं।

वह ग्रंथ श्रीमद्राधा सुधानिधि नाम से प्रख्यात है और बंबई, काशी आदि कई स्थानों में नागरी अक्षरों में छप चुका है और हिन्दी का सारा संसार जानता है कि वह ग्रंथ गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी का बनाया हुआ है। किन्तु आज अचानक वह ग्रंथ हमको बंगला अक्षरों में

छपा हुआ मिला। जिसमें कई नई बातें देखने में आईं जिन्हें हम संक्षेप से वर्णन करते हैं।

पुस्तक के टाइटिल पेज पर "श्रीराधा रस सुधा निधि" नाम छपा हुआ है और उसीके नीचे "स्तोत्र-काव्यम्" भी लिखा हुआ है। वैष्णव संगिनी कार्य्यालय पोष्ट एलाट जिला हुगली के द्वारा यह पुस्तक प्रकाशित हुई है और बंगला सं० १३१८ में प्रथम खंड तथा १३२० में द्वितीय खंड छापा गया है।

उक्त पुस्तक के पहिले खंड की भूमिका में लिखा हुआ है कि-"वैष्णव संगनी पत्रिका में क्रम से हमने इसे प्रकाशित किया था पर अब कई सज्जनों के आग्रह से इसे पुस्तकाकार निकालते हैं। बंबई और काशी की देवनागरी अक्षरों में छपी हुई पुस्तकों से पाठ शुद्ध कर के हमने इसे छापा है। बम्बई में जो प्रस्तक छपी है वह गौड़ीय वैष्णवों के अनुकूल नहीं है। श्रीराधा बल्लभीय संप्रदाय के अनुसार उसकी टीका है। इसलिये हमने गौड़ीय वैष्णवों के अनुकूल इसकी टीका की है।"

दूसरे भाग की भूमिका में लिखा हुआ है कि "काशी निवासी प्रकाशानंदजी इसके रचयिता थे। गौराङ्गदेव का आश्रय लेकर फिर इनका नाम प्रबोधानंद हुआ। इनने श्रीराधासुधानिधि और वृंदावन शतक आदि कई ग्रंथ लिखकर वैष्णव साहित्य को बढ़ाया

है। श्रीधाम श्रीवृन्दावन के श्रीराधावल्लभी गोस्वामी इसे श्रीहितहरिवंशजी का बनाया हुआ ग्रंथ बताते हैं और मिष्टर ग्राउस ने भी अपने ग्रंथ में यही लिखा है किन्तु विशेष अनुसंधान से जाना जाता है कि श्रीहित-हरिवंशजी ने जितने ग्रंथ लिखे हैं—वे सब हिन्दी ही हैं। इससे यदि वे श्रीराधासुधानिधि ग्रंथ लिखते तो संस्कृत में और भी कोई ग्रंथ लिखते। जो सुधानिधि ऐसा अद्भुत ग्रंथ लिख सक्ता है वह संस्कृत में और ग्रंथ न लिख सके यह कभी संभव नहीं हो सक्ता। गौड़ीय वैष्णवों के समीप जो पोथी हैं। उनके आरंभ और अन्त में वैष्णवों के सदाचार युक्त श्री गौरचन्द्र विषयक श्लोक लिखे हुए हैं। अतएव यह ग्रंथ श्रीहितहरिवंशजी का बनाया हुआ नहीं है"

इसके पश्चात और भी श्रीहितहरिवंशजी के संबंध में अनर्गल कुतर्क किये गये हैं, किन्तु साहित्य से उनसे कोई सम्बध नहीं है। अब इसी भूमिका को लेकर मैं अपने विचार प्रगट करता हूं। पाठक, ध्यान देवें कि यह कैसी मार्के की चोरी है।

भूमिका में जो कुछ लेखक ने लिखा है वह केवल अपने कुतर्कों से लिखा है। इसमें कहीं भी कुछ प्रमाण नहीं दिया है। फिर अपनी तर्क शैली में तो प्रकाशक ऐसे मग्न हो गये हैं कि उन्हों ने प्रमाण पर भी हरताल

फेर दी है। खैर! अब हम भी विशेष प्रमाण की आवश्यकता न समझ कर अपनी युक्ति से ही प्रकाशक के वचनों पर विचार करना आरंभ करते हैं।

(१) प्रबोधानंदजी की कल्पित श्री राधारससुधानिधि बंगला के टाईटिल पेज पर उसके नाम के आगे "स्तोत्र काव्यम्" लिखा हुआ है। श्रीहित हरिवंश जी की "श्रीमद्राधा सुधानिधि" जो दो ऐक स्थान में नागरी अक्षरों में छपी हुई है। उसमें यह शब्द नहीं है। अब देखना चाहिये कि जितने स्तोत्र काव्य हैं। उनमें केवल उसी देवता संबंधी, पद्य रहते हैं या किसी और देवता की भी आराधना की जाती है। जिनको थोड़ा भी संस्कृत का अभ्यास है वे जानते हैं कि स्तोत्रों में सिवाय उस देवता के जिसके नाम पर वह कहा गया है और किसी देवता का नाम नहीं लिया जाता है। फिर संस्कृत ही में नहीं। यह शैली व्रज भाषा तक में चली आई है। हौने इसी श्री राधा शब्द सम्बन्धी "श्रीराधा सुधा शतक" लिखा है। उसमें वे ऐसे मग्न हो गये हैं कि—"काह्न को शरण गोरी सांवरीसी जोरी को" कहने में भी नहीं चूके हैं। केवल श्रीराधिका जी काही सब कवित्तों में वर्णन किया है। तब कहिये यह स्तोत्र काव्य कैसा है कि जिसके आदि अन्त में चैतन्य प्रभु की बंदना की गई है? नाम तो ग्रंथ का राधारस सुधानिधि

और वन्दना की जाय चैतन्य प्रभु को। यह बात स्तोत्र काव्य में बड़े धोखे की जान पड़ती है। प्रकाशक यदि "काव्य" ही लिखते तो हमको इतनी आपत्ति नहीं होती। क्योंकि रघुवंश आदि में कालीदास ने भी श्रीशिव जी की आराधना की है। पर यहां तो "स्तोत्र" शब्द "काव्य" के साथ लगा दिया गया है। इससे जान पड़ता है कि या तो प्रकाशक खींचातानी करने में चूके हैं या किसी की पगड़ी किसी के सिर पर धर देने में चतुरता दिखाते हैं। यह ग्रंथ बङ्गला स्तोत्र काव्य कह के छापा गया है। इस स्तोत्र काव्य के आदि अन्त में कृष्ण चैतन्य जी की वन्दना की है। इससे सिद्ध होता है कि स्तोत्र काव्य से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है और वे पीछे से बनाकर धर दिये गये हैं।

(२) यह ग्रंथ यथार्थ में स्तोत्र का काव्य है। निरा काव्य नहीं है। जब इसके दोनों श्लोक प्रक्षिप्त माने गये तो अब जिस आधार पर यह ग्रंथ प्रबोधानंदजी का जबर्दस्ती बनाया गया था। वह उनका बनाया हुआ सिद्ध नहीं हुआ और जब वे कर्ता नहीं रहे तो बनाये हुए उन दो श्लोकों को निकाल देने पर इस यथार्थ ही स्तोत्र काव्य के कर्ता श्रीहितहरिवंशजी को ही मानना पड़ेगा।

(३) यह ग्रंथ श्रीराधिकाजी के विषय में कहा गया

है। महात्मा नाभाजी की भक्तमाल से प्राचीन महात्माओं के भाव का पता लगता है और उसे प्रायः सब ही मनुष्य प्रमाण मानते हैं। प्रबोधानंद जी के विषय में श्रीनाभा जी ने एक शब्द भी श्रीराधा शब्द सम्बन्धी नहीं कहा है पर श्रीहितहरिवंशजी के सम्बन्धमें वे स्पष्ट कहते हैं कि—

छप्पै।

श्री राधा चरण प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी।
कुंज केलि दंपती तहां की करत खवासी॥
सर्वसु महा प्रसाद सिद्ध ताके अधिकारी।
विधि निषेध नहिं दास अनन्य उत्कट व्रतधारी॥
श्री व्यास सुवन पथ अनुसरै-सोई भलें पहिचानिहै।
श्री हित हरिवंश गुसांई की रीत सुकृत कोई जानिहै

नाभाजी भक्तमाल।

इससे सिद्ध होता है कि श्रीराधासुधानिधि ग्रन्थ प्रबोधानंद जी का बनाया हुआ नहीं है। किन्तु श्री हितहरिवंश जी का कहा हुआ है। क्योंकि भक्तमाल के सारे पत्र उलट जाइये। "श्री राधा चरण प्रधान" केवल श्री हरिवंश जी के और किसी महात्मा के विषय में श्री नाभा जी ने नहीं कहा है।

(क) आजकल पुरातत्व के विषय में जब कहीं भारत में झगड़ा होता है तो आपस की खींचातानी में

प्रायः यूरोपीय विद्वानों का फैसला प्रमाण माना जाता है पर प्रबोधानंद जी के पक्षकार तो पक्षपात के परवस होकर मिष्टर ग्राउस के लिखने को भी प्रमाण नहीं मानते हैं। जिन मि० ग्राउस ने व्रज के तीर्थ महात्मा आदि को खोज करके इङ्गरेजी में मथुरा नामक ग्रन्थ लिख के हिन्दुओं को पुरातत्व बताया और उसी के आधार पर बाबू तोताराम जी प्लीडर अलीगढ़ ने व्रज विनोद नामका ग्रन्थ लिखा। उनको केवल तर्क से भूले हुए बता देना कहिये तो यह कहां की बुद्धिमत्ता है। जब इस बंगला ग्रंथ में मि० ग्राउस के कहे हुये को खंडन करने को कोई प्रबल युक्ति नहीं है। तो इससे भी मि० ग्राउस के कहे अनुसार श्री राधा सुधानिधिजी श्री हरिवंश जी का कहा हुआ माना जायगा।

(ख) प्राचीन गोस्वामी श्री कृष्णचन्द्र जी ने अपने ग्रन्थों में स्थान २ पर कहा है कि—

यन्न: प्रदर्शितं नाम श्री मद्भागवते क्वचित्।
स वैयासिक रूपेण-दर्शिते तत्सुधानिधौ ॥ १ ॥

श्रीहरिवंशजी और श्री शुकदेव जी दोनों के ही पिता का नाम श्री व्यास जी था। दोनोंही श्री वैयासिक कहे गये हैं। इस श्लोक का भावार्थ यही है कि जिस श्री राधा शब्द को श्री मद्भागवत में कहीं भी प्रगट करके नहीं कहा था उसी शब्द को वैयासिक ने श्री राधा सुधा-

निधि में प्रगट करके कहा है। इससे भी प्रबोधानंद जी के पिता व्यास नहीं थे। श्री हरिवंश जी वैयासिक हैं। श्री श्री राधा सुधानिधिजी श्रीहितहरिवंशजी का ही बनाया हुआ ग्रन्थ है।

(ग) आधुनिक समय में भी बाबू राधाकृष्ण दास जी ने नागरी प्रचारणी सभा द्वारा बड़ी खोज करके ध्रुवदासजी की भक्तनामावली छपवाई थी। उसमें भी उन्होंने श्रीहितहरिवंशजी को ही श्रीराधासुधानिधिजी के कर्ता माना है। और प्रबोधानंद जी के जो चार ग्रंथ बताये हैं। उनमें श्रीराधासुधानिधिजी की तो बातही क्या है ? श्री राधा शब्द सम्बन्धी कोई ग्रन्थही नहीं है। और मिश्रबंधुविनोद में भी जिस से यद्यपि हमारा मत नहीं मिलता है। श्री हित हरिवंशजी श्री सुधानिधिजी के कर्ता माने गये हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने भी वैष्णव सर्वस्व में श्रीराधासुधानिधि के कर्ता श्री हितहरिवंश जी को ही कहा है। यह उनकी सत्य खोज का स्पष्ट प्रमाण है।

(४) प्रकाशक ने चाहे तर्क की ही धुनि में यह बात लिख डाली हो कि गौड़ीय वैष्णवों के समीप जो पुस्तकें मिलती हैं उनमें प्रबोधानंद जी का नाम है परंतु हमने जहां तक जाना है। कहीं भी इस पुस्तक के सिवाय जो बना कर छापी गई हैं और कोई प्राचीन पुस्तक

ऐसी नहीं मिली है कि जिसमें प्रबोधानंद जी का नाम लिखा हो। हां! खोज करने पर गौड़ीय वैष्णवों के समीप "प्रेम पत्तन" नाम का एक ग्रन्थ प्राप्त हुआ है जिसमें ग्रंथ कर्ता उदार महोदय ने स्पष्ट लिखा है कि—

"श्रीरासकोवंशविरचितं प्रेम पत्तनम्" "परम प्रेम सर्वस्व पूर्ण संपूर्णतामयात्" "संवत १८८२ चैत्र कृष्ण १० शनि लेखक श्री व्रजमोहन वृन्दावन मध्ये यमुना तीरे" पृष्ट संपूर्ण ७६ जिसके १७ वें पृष्ट में।

तथैवोक्तं श्री गोस्वामी श्री हरिवंश चन्द्रजी महानु भावैः कैशोराद्भुत माधुरी भर धुरीनाङ्घ्री राधिकां प्रेमोल्लासभि राधिकां निखधिध्यायेतियेतद्विपत्यक्त कर्म्मभिरात्यमेव भगवद्धर्मेप्यहो निर्म्ममा सर्वाश्चर्य्यं गतिर्गता।

कैशोराद्भुत माधुरी कर्मभिः समस्तैरेव आत्मनः स्वतः कार्म्माणि संत्यज्यंतीति भावः भगवद्धर्मोपि श्री भागवतोक्ते प्रियेवा भगवता प्रोक्ता इत्यादौ तत्रापि निर्मना नैते धर्मोमामकीनो इति तस्मिन्नपि निर्ममा स्पष्ट मन्यत् ॥४३॥

इसी प्रकार ४४वें श्लोक की व्याख्या करते हुये भी एक गौड़ीय महात्मा ने इन श्रीसुधानिधिजी के श्लोकों द्वारा श्रीहितहरिवंशजी को श्रीराधासुधानिधि के कर्ता माने हैं। अब साहित्य से वोही विचार करें कि सैंकड़ों वर्ष की कही हुई बात प्रमाण मानी जायगी या आज एक हठीले साहस करने वाले का कहना प्रमाण माना

जायगा। इस ग्रन्थ के देखने से तो स्पष्ट जान पड़ता है कि उक्त प्रकाशक सज्जन अपने पूर्वज महानुभावों के कहने पर भी जान करके हरताल फेरते हैं शोक! क्यों ऐसे बंगाल सभ्य प्रान्त में ऐसी अनोखी सृष्टि उत्पन्न हुई है।

(५) प्रकाशक ने श्रीहरिवंशजी को प्रचलित हिन्दी के ग्रन्थकार बताए हैं, किन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। श्री हरिवंश जी का प्रचलित हिन्दी मय कोई भी एक पद्य नहीं है। उनके जितने पद हैं सब ब्रजभाषा में संस्कृत मिले हुए हैं। "द्वादश चन्द्र क्षतस्थल मंगल वुद्द विरुद्द सुरु गुरु बंक" या "तरल तिलक ताटंक गंड पर नासा जलज मनो" आदि और भी पद जो सज्जन चाहें देख सक्ते हैं। इन अक्षरों से स्पष्ट जान पड़ता है। कि वे संस्कृत के परम विद्वान् थे और श्रीसुधानिधिजी उनका ही बनाया हुआ है। यदि इतने पर भी संतोष न हो तो यमुनाष्टक और आशाशतक आदि और भी संस्कृत के जो ग्रन्थ श्री हरिवंश जी ने बनाये हैं। उनके देखने से यह स्पष्ट जान पड़ेगा कि प्रकाशक ने जो यह लिखा है कि "सुधानिधि सा उत्तम ग्रन्थ जो लिख सक्ता है वह संस्कृत में और भी ग्रंथ लिखता" कितना धोखे से भरा हुआ है। अब यदि प्रकाशक के ही वचनों की पुष्टि से श्रीहरिवंशजी के यमुनाष्टक

आदि संस्कृत के ग्रंथ पाये जाते हैं जो इनके ही कहने के अनुसार श्रीहरिवंशजी श्रीसुधानिधिजी के कर्ता हैं। प्रबोधानंद जी को ख़याली दुनियां में बैठकर जो उन्होंने कर्ता माना है सो उनकी ही युक्ति उनके पक्ष को खंडन करती है।

(६) प्रकाशक ने "गौड़ीय वैष्णवों के समीप पोथी मिलती है। उसमें प्रबोधानंद जी का नाम है" बस; केवल इतना ही लिखकर शांत होगये हैं। पर कोई भी प्राचीन पुस्तक का उन्होंने पता नहीं दिया है। केवल परस्व हरण करने के लिये अपने तर्क से लिखा है। यद्यपि हमने विशेष खोज नहीं की है किन्तु अनायास हमारे एक मित्र के पास जो एक प्राचीन पुस्तक मौजूद है। उसमें देखा तो "सं० १८३६ मेखसा नगरे श्री हित-हरिवंश जी कृतं दया वल्लभेन लिखितं। लिखा हुआ है और फिर प्रमाणिक तौर से सुना है कि देववन तथा श्री वृन्दाबन में भी तीन २ सौ चार २ सौ वर्ष की ऐसी पुस्तकें लिखी हुई मौजूद हैं कि जिनमें ग्रन्थ कर्ता श्री हरिवंश जी कहे गये हैं। इसलिये खाली ख़याली दुनियां के आगे हमारे ये प्रबल प्रमाण भी श्रीहरिवंशजी श्रीसुधानिधिजी के कर्ता माने जाने में युक्ति संगत हैं। प्रबोधानंदजी श्रीसुधानिधिजी के कर्ता किसी भी प्रकार नहीं हो सके।

(७) सबसे अधिक प्रकाशक इस ग्रन्थ को प्रबोधा-

नंद जी का बना लेने में इस जगह बहुतही चूके हैं कि उन्होंने भ्रमतर्पिका में यह स्पष्ट लिखा है कि—"इसकी टीका श्रीराधावल्लभीय संप्रदाय के अनुसार थी सो हमने गौड़ीय संप्रदाय के अनुसार करके उसे छपी हुई नागरी पुस्तकों से मिलाकर छापा है" वाह! वाह!! क्या प्रबल युक्ति है, इससे तो स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि कल्पित प्रबोधानंदी सुधानिधिजी की कोई टीका नहीं थी। वह नई बनाई गई है। अब बुद्धिमान सज्जन ही विचारें कि जिन श्रीहरिवंशजी की श्रीसुधानिधिजी की आठ दस टीकाएं चार २ सौ वर्ष की मौजूद हैं और उनमें स्पष्ट श्रीहरिवंशजी कर्ता माने गये हैं सो तो झूठ है और आज जो आधुनिक टीकाकार उसे प्रबोधानंद जी कृत बताते हैं सो क्या यह सच है? कभी नहीं। आपके वाक्यों से साफ जाना जाता है कि बम्बई और काशी की छपी हुई श्रीराधा सुधानिधिजी पुस्तक में आदि अन्त के दो श्लोक मिला कर परकीया भाव की आधुनिक टीका करके उसे प्रकाशक ने प्रबोधानंद जी के नाम से धींगा धींगी छाप ली है।

बंगाली साहित्य संवाद पत्र में एक बंगाली सज्जन ने कालीदास को बंगाली बनालेने में इस युक्ति से काम लिया है कि उनके काव्य में बंगाली संस्कृत का उपयोग पाया जाता है। इसी प्रकार यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय

तो श्रीराधासुधानिधजी में भी ब्रज भाषा मिश्रित संस्कृत का उपयोग पाया जायगा और इसी आधार पर श्रीहरिवंशजी उक्त ग्रन्थ के कर्ता माने जा सक्ते हैं। पर ऐसी कल्पना प्रत्यक्ष के लिये उपयोगी नहीं। बंगालियों में यह बड़ा भारी दोष है कि वे अपना गौरव बढ़ाने के समय दूसरे के धन जन को अपनाने में भी कोई कसर नहीं करते हैं। भला प्रबोधानंदजी से और श्रीसुधानिधिजी से क्या २ संबंध? क्या संस्कृत बंगाली ही जानते हैं या जानते थे? आज भी तो उदार चेता बंगाली यह मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं कि हम संस्कृत शास्त्र में मिथिला पंडितों के शिष्य हैं। इससे कहना पड़ता है कि अच्छा होता जो हमारे उदारचेता वैष्णवसंगनी पत्रिका के संपादक अभी विद्यापति ठाकुर की कविता पर ही अपनी प्रभुता जमाते तब आगे बढ़ते। अभी नागरी ज्ञाता संस्कृत कवियों के काव्यों को छुड़पने का अवसर बहुत दूर है। श्रीराधासुधानिधिजी ऐसा उत्तम काव्य नागरी अक्षरों में देखकर प्रकाशक भौचक तो हुएही हैं तिसपर तुर्रा यह है कि उसे नागरी वाले श्रीहरिवंशजीका बनाया हुआ बताते हैं यह आपको खटकता भी है और अखरता भी है। इसीसे इसे अपना बनालेने को धुएं के बादल बनाये हैं। पर हाय रे हिन्दी वालों! तुमने महा अनर्थ कर डाला! तुमने न तो बंकिमचन्द्र चटर्जी के

ग्रंथों को अपना बनाया और न हड़प विद्या सीखी। तब तुम किस योग्य हो कि श्रीहरिवंशजी का नाम लेते हो। चुप! बिना प्रमाण के ही इस प्रकाशानंद जी का बनाया हुआ सुधानिधि बताते हैं। तुम मत बोलो? मुंह मत खोलो। क्योंकि तुम्हारे लिये समय ऐसाही है।

बंगला १३१८—१३१८ सन हमारे संवत ६८ और ७० से मिल सक्ता है। इसी समय बंगला प्रबोधानंदी सुधानिधिजी छपी हैं। पर बनारस सिद्देश्वर प्रेस में इससे बहुत वर्ष प्रथम मूल मात्र नागरी अक्षरों में यह पुस्तक छप चुकी हैं। तथा टीका सहित श्रीवेंकटेश्वर प्रेस में सं० ६४ में छपी है। प्रकाशक ने भी स्वीकार किया है कि इन्हीं दोनों पुस्तकों से मिलाकर हमने नई टीका करके पुस्तक को छापा है। आ हा! सत्य तो आपके ही अक्षरों में आपसे स्पष्ट कह रहा है कि चार वर्ष पीछे नागरी अक्षरों में छपी हुई पुस्तक पर से हमने यह पुस्तक छापी है। पर असत्य पक्षपात ने प्रबोधानंदी सुधानिधिजी आपसे कहवा कर उसको आधुनिक टीका बनवाई है। हा शोक! बंगला साहित्य की इस धींगा धींगी पर केवल पश्चाताप के और क्या कहैं।

प्रिय मात्र भाषा प्रेमी सज्जनो! प्रसन्न होइये कि अब भी आपकी भाषा में ऐसे २ ग्रन्थ हैं कि जिनका टु-

कड़ा पाकर कई कृतघ्नी अपने अहंकार में मग्न होरहे हैं। पर पश्चात्ताप यही है कि दिन २ तुम अपने आत्म बल को गमाते ही चले जाते हो। भाइये! अब सोने का समय नहीं है। यदि हम स्वयं कुछ उपार्जन न कर सकें तो पूर्वजों की संपत्ति को इस अंधियारी रात्रि में चोरों से वचाना तो हमारा काम है।*

—:०:—

मिश्र बन्धु विनोद।†

(ले० पं० गोपाल प्रसाद शर्मा)

वीरवल विनोद देखने के पश्चात हमारा कुछ ऐसा ही खयाल था कि ग्रन्थकार लोग विनोद नाम धारी पुस्तकों में हिन्दी साहित्य के अभाव की पूर्ति न करके केवल जहां तहां की किम्बदन्तियों को एकत्र करके लोगों के मन वहलाव की बातें लिख दिया करते हैं। किन्तु आज जब हमने एक मित्र के आग्रह से "मिश्र बंधु विनोद" के प्रथम खंड को देखा तो जान पड़ा कि इस पुस्तक का नाम केवल विनोद ही नहीं है किन्तु हिन्दी

* श्री कमला भाग १ संख्या १२ अगहन सं० १९७३ दिसम्बर १९१६ पेज ४४९।

† श्री कमला भाग २ संख्या १०—११ पेज ३४० आश्विन कार्तिक १९७४ अक्टोबर नवम्बर १९१७।

साहित्य का इतिहास और कवि कीर्तन दो नाम इसके और भी हैं। और तीन श्रीमान बुद्धिमान इसके लेखक भी हैं। खंडुए की ग्रन्थ प्रकाशक मंडली इसे प्रकाशित करके सुयश की भागी हुई है।

ग्रन्थ, ग्रन्थकार और प्रकाशक इन तीन नामी साधनों को देखकर कहना पड़ता है कि ग्रन्थ बड़े काम का है। हिन्दी साहित्य संसार में ऐसे ग्रन्थ जो आज कल निकलने लगे हैं यह हिन्दी के अहोभाग्य ही हैं। किन्तु साधन प्राप्त होते हुए भी इस ग्रन्थ में जिनकी बातें उनके घरवालों से पूछे बिनाही जहां तहां के आधार पर लिख देने से इस ग्रन्थ में कई भारी २ अशुद्धियां हो गई हैं।

ग्रन्थ की प्रथमावृत्ति में अशुद्धियाँ रह जाना यह कोई नई बात नहीं है क्योंकि प्रायः ऐसा हुआही करता है। इसीसे मिश्र बंधु सज्जनों ने भी ग्रन्थ के प्रथम भाग के तेरहवें पृष्ट में यह लिख दिया है कि—"इस ग्रन्थ में बहुत से ऐसे कवियों का वर्णन है जिनके काल निरूपण में अशुद्धियें होंगी। इसमें इतना ध्यान रखना चाहिये कि एक मनुष्य सब कुछ नहीं जान सक्ता। बहुत सी ऐसी बातें हैं जो हमें पता लगानें से भी नहीं ज्ञात हुई हैं परन्तु औरों को वें सहजही में मालूम हैं। यदि वे उन बातों को हमें सूचित करेंगे तो आगे के संस्करणों में वे गलतियां निकाल दी जावेंगी" इस लिये संपूर्ण साहित्य

सेवियों, धर्म्मवानों और कवियों को उचित है कि वे इस सूचना को पढ़कर अपना कर्तव्य पालन करके मिश्रबंधु सज्जनों के सहायक होवें।

मैं भी मिश्र बंधु सज्जनों की प्रतिज्ञानुसार आज एक महानुभाव गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी के संबंध में साहित्य और ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ लिखने को तत्पर हुआ हूं। यदि पक्षपात रहित और उदार सज्जन इन बातों पर ध्यान देंगे तो मैं और भी आगे ग्रन्थों की अशुद्धियें निकालने का और नये २ कवियों के वर्णन का सामान उनकी सेवा में अर्पण करूंगा।

गोस्वामी श्रीहरिवंश जी के सम्बन्ध में भ्रम मूलक बातें।

उक्त गोस्वामी जी की प्रशंसा विनोद में बार २ कई स्थानों पर पूज्य दृष्टि से की गई है। उन्हें यहां लिखकर लेख को बढ़ाना हम योग्य नहीं समझते हैं। पर इस ग्रन्थ में गोस्वामी जी के विषय की आपत्ति जनक बातें यदि है तो वे यही हैं कि—(१) वह १५५९ में उत्पन्न हुयेथे—(२) प्रथम गोपालभट्ट जी के शिष्य थे फिर श्री राधिका जी के शिष्य होकर उन्होंने श्री राधावल्लभी संप्रदाय चलाई (३) श्री सद्राधा सुधानिधि और श्री चतुरासी के अलावा उन्होंने एक ग्रन्थ कर्णानन्द का-

व्य भी बनाया (४) श्रीराधारमण जी ठाकुर पधराये विनोद पृष्ट ११८—२६७ और २८४ में प्रथम खंड।

सम्बत् का निरणय।

मिश्र बंधु सज्जनों ने ही नहीं। किन्तु कई आधुनिक ग्रंथकारों से भी इस श्रीहरिवंशजी के जन्म समय में धोखा खाया है और इसीसे वे दूसरे की नकल करते हुए धोखा खाते चले आ रहे हैं किन्तु हमने जब चतुरासी जी का विवादी लेख सरस्वती में निकाला और जन्म समय जानने की खोज की तो जान पड़ा कि इस झूठे जन्म सम्वत् की जड़ लेखक लोग ही हैं। यह जान कर के काशी इन्दु की सितम्बर १९१४ ई० कला ५ खंड १ में हमने चतुरासी जी के लेखका प्रतिवाद करते हुए यथार्थ सम्वत् बताया है। आज प्रसंग वस यहां केवल यही कह देना बस समझते हैं कि श्रीहरिवंशजी के पुत्र गोस्वामी श्रीकृष्णचन्द्र जी जो संस्कृत के बड़े भारी विद्वान थे, वे अपने परम पूज्य पिता का चरित्र लिखते हुए ग्रंथ में सम्वत् का परिचय इस प्रकार देते हैं कि—

श्लोक।

विपद्गुणेशु शुभ्रांशु शंख्ये १५३० संवत्सरे शुभे।
माधवे मास शुक्लैका दश्यांच सोमवासरे॥
गोस्वामी हरिवंशाख्य श्री सन्माथुर मण्डले।
वादग्रामे शुभस्थाने प्रादुर्भूतो महाम्गुरुः॥२॥

तो अब इस प्रबल प्रमाण के आगे किसी और का कहा हुआ प्रमाण मानना निरा हठ और पक्षपात ही कहा जायगा। क्योंकि पिता की जितनी बातें पुत्र जान सक्ता है उतनी और कोई नहीं जान सकेगा।

इस १५५९ की जड़ इस प्रकार पड़ी है कि भगवत मुदित गौड़िया वैष्णव ने एक रसिक अनन्य माल ग्रंथ बनाया है। उसकी हस्त लिखित प्रति हमारे एक मित्र के पास भी है उसमें लेखक नें भूल सें यह लिख दिया है कि—

चौपाई।

पंद्रह सौ उनसठ संवत्सर, माधव शुक्ला ग्यास सोमवर॥
तह प्रगटे हरिवंश हित, रसिक मुकुट मणि लाल॥

इसी प्रकार जन्म के आगे उस ग्रंथ में भूल के कारण यह भी लिखा हुआ है कि—

चौपाई।

पंद्रह सौ बावन जु सुहायो। कातिक सुदी तेरस सुख छायो॥ पट्ट महोत्सव तादिन कीन्हों॥

अर्थात्, जन्म से सात वर्ष प्रथम ही श्रीहरिवंश जी ने मन्दिर बनाकर अपने इष्टदेव को उसमें पधारा दिया था पर जो विद्वान हैं इतिहास से जिनको कुछ भी प्रीति है वे ऐसी असंभव बातों को कभी नहीं मान सक्ते हैं।

हमने इसीलिये इस अशुद्ध पाठ को छोड़कर जब शोधित अंश पर दृष्टि डाली तो वहां स्पष्ट लिखा हुआ है कि—

चौपाई।

पंद्रह सौ त्रिंशत संवत्सर १५३०।

माधव शुक्ला ग्यास सोमवर॥

दोहा।

तहां प्रगटे हरिवंश हित, रसिक मुकुट मणिलाल॥

और इष्टदेव पधराने की तिथी को शुद्ध करने वाले ने शुद्ध करके इस प्रकार लिखा है कि—

चौपाई।

पंद्रह सौ पैंसठ जु सुहायो। कातिक सुदि तेरस सुख छायो
पट महोत्सव ता दिन कीन्हों॥

इससे सिद्ध होता है कि ऐसी ही पुस्तक का भीतरी विषय बिना विचारे ही किसी ने हस्त दोष के १५५९ संवत को लिखा दिया है। और उसी की आज काल के लेखक एक दूसरे की नकल करते आये हैं यदि कोई सज्जन विचार करते तो सम्वत्सर के शोधित अंश १५३० को लिख सक्ते थे। पर किसी ने भी आज तक जानने की कोशिश नहीं की और यह "चल चल बीबी मक्के" चलते चलते दिल्ली से होती हुई हिन्दी के इतिहास दरबार मिश्र बन्धु विनोद में भी पहुंच गई।

एक शङ्का हमको इस १५५९ के सम्बन्ध में और भी

उदय होती है कि आज काल संप्रदाई द्रोह के कारण कई ग्रंथ एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिये नष्ट भ्रष्ट किये जा रहे हैं सो यदि मिश्र बन्धु सज्जनों ने भी श्री हित हरिवंश जी के चरित्र सम्बन्धी जो पुस्तक देखी हो और उसमें इसी सम्वत् को पुष्ट करने के लिये स्थल २ के सम्वत् रफू किये गये हों तो उन सज्जनों को वह ग्रंथ कभी भी प्रमाण न मानना चाहिये क्योंकि और भी छः सात ग्रंथ जिन्हें आगे वर्णन करूंगा और जो श्रीहरिवंश जी के चरित्र सम्बन्धी प्रमाणिक माने जाते हैं। उनमें कहीं भी १५५८ जन्मकाल नहीं लिखा है किन्तु १५३० ही लिखा हुआ है।

गुरु शिष्य सम्बन्धी भ्रम।

मिश्र बन्धु सज्जन अपने ग्रंथ में लिखते हैं कि "श्री हरिवंश जी पहिले श्री गोपाल भट्ट जी के शिष्य थे फिर पीछे श्रीराधिका जी के शिष्य होकर उन्हों ने श्रीराधा-वल्लभी संप्रदाय चलाई"

श्रीहरिवंशजी के चरित्र ग्रन्थ।

गोस्वामी श्रीहरिवंश जी के चरित्र ग्रंथ संस्कृत और व्रज भाषा में प्राचीन समय दो २ सौ चार २ सौ वर्ष के लिखे हुए जो आज काल मिलते हैं, वे ये हैं-अनन्यसार, अनन्य रसिक माल, श्रीहितहरिवंश प्रशस्ति श्रीहित मालिका

सुरत्नमणिमाला और हितामृत आदि। इन घरू संप्रदाई ग्रंथों के सिवाय श्रीनाभा जी की मूल भक्तमाल और उसकी उर्दू और हिन्दी की अनेक टीकाओं में भी श्री-हरिवंश जी का चरित्र अच्छे प्रकार वर्णन किये गये हैं। किन्तु इनमें कहीं भी श्रीहरिवंशजी श्रीगोपाल भट्ट जी के शिष्य नहीं बनाये गये हैं। केवल श्री राधिका जी के ही शिष्य होने की साक्षी ये सब ग्रंथ देते हैं। इतना प्रबल प्रमाण होते हुए भी फिर न जाने क्यों मिश्रबन्धु विनोद में उपर्युक्त बात बे सिर पैर की आ गई है।

श्रीहरिवंश जी के सब चरित्र ग्रंथों में लिखा हुआ है कि वे छोटी ही अवस्था में श्रीराधिका जी के शिष्य हो गये थे। और यही साक्षी उनके पुत्र स्वयं गोस्वामी श्री कृष्ण चन्द्र जी ने भी अपने चरित्र ग्रंथ में दी है।

श्लोक।

सम्यग्भावैः राधिकां भावयित्वा,
प्रेम्णा भूमि मुह्यतो विह्वलो ऽभूत्।
चेष्टा प्राप्तं राधिका मंत्रवर्य्यं,
मिन्दुर्वेदे वीण वाणी दिदेश॥ १॥

अब यदि इन प्रमाणों पर भी किसी को यह हठ हो कि वे गोपाल भट्ट जी के ही शिष्य थे तो उस समय के देश काल को विचार कर वे यह उत्तर दें कि जब भारतवर्ष में रेल का नाम तक नहीं था और प्रवास में अनेक कठिना-

हुयां थी। तब गोपालभट्टजी मदरासी, कब किस अवस्था में कैसे श्रीवृन्दावन आये थे और कब कैसे बंगाली श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के शिष्य हुए थे तथा कब कैसे श्रीवृन्दावन से सैंकड़ों कोश दूर हिमालय की तरहटी देवबन में श्री हरिवंश जी को शिष्य करने गये थे। क्योंकि पैंतीसवर्ष की अवस्था से नीचे तो ऊपर निर्णय में कहे अनुसार श्रीहरिवंश जी का वृन्दावन में श्रीगोपालभट्ट जी से समागम होना इस ऐतिहासिक दृष्टि से कभी भी संभव नहीं हो सक्ता है। फिर जिन सज्जनों के घर में आजकल परम्परा से वैष्णवता है वह यह जानते हैं कि जब आजकल भी पांच २ छः वर्ष के बालक मंत्र से दीक्षित करादिये जाते हैं तो उस प्रचण्ड वैष्णवता के काल में कैसे श्रीहरिवंश जी गोपाल भट्ट जी के शिष्य होने को बैठे रहे थे।

हां! एक बात और भी इस जगह ध्यान देने योग्य है कि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु १५४२ में श्री हरिवंशजी के जन्म १५३० से १२ वर्ष पीछे उत्पन्न हुए थे। युवा अवस्था में ब्याह हुआ। २१ वर्ष की अवस्था में श्राद्ध करने गया गये। वहां से घर आकर फिर कुछ दिन बाद संन्यास लिया और फिर दक्षिण की यात्रा की। वहां से लौटने पर श्रीजगदीश गये तब कुछ दिन बाद श्रीवृन्दावन की यात्रा की। अब यदि गया के २१ वें वर्ष को अनुमान से इस गृहस्थाश्रमी और त्यागी यात्रा काल के १५ वें

वर्ष में जोड़ दें तो ३६ वर्ष की आयु अर्थात् १५७८ में चैतन्य प्रभु का श्रीवृन्दावन आना सिद्ध होता है। इससे प्रथम श्रीगोपालभट्ट जी उनके शिष्य किसी भी दशा में नहीं हो सक्ते हैं पर श्रीहरिवंश जी तो १५६२ में ही श्रीराधावल्लभजी का मन्दिर बना के जीवों को मंत्र दे कृतार्थ करने लगे थे तब कैसे वे श्रीगोपाल भट्टजी के शिष्य कहे जा सक्ते हैं। फिर यह भी सुना जाता है कि श्रीगोपालभट्ट जी चैतन्य प्रभु के नहीं किन्तु प्रबोधानंदजी के शिष्य थे। प्रबोधा नंद जी श्री चैतन्य प्रभु के श्री वृन्दावन से लौटने पर दुबारा काशी आने पर शिष्य हुए थे। इससे तो श्री गोपाल भट्ट जी के शिष्य होने का सम्वत् और भी दो चार वर्ष अनुमान से पीछे जा पड़ता है। तब कहिये कैसे यह गुरु चेलों की उलझन सुलझ सक्ती है। यहां तो यही लोकोक्ति चरितार्थ होती है कि "मांगन गई थी पूत-खोय आई भरतार"।

झगड़े की जड़।

(मेरी यह कभी भी इच्छा नहीं रहती है कि किसी भी संप्रदाय के प्रसंग को उठाकर द्रोह उत्पन्न करूं पर लाचार विषय को स्पष्ट किये बिना बात नहीं समझ पड़ेगी। इसलिये पुस्तकों और लेखों के आधार पर मैं कुछ झगड़ों का वर्णन करता हूं। आशा है

दोनों सम्प्रदाय के सज्जन मेरी इस ढिठाई को क्षमा करेंगे क्योंकि एक ऐतिहासिक ग्रंथ को शुद्ध कराने के लिये साहित्य की दृष्टि से ही मैं प्रवृत्त हुआ हूं। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है)

श्रीहरिवंशजी ने श्रीराधिकाजी से मंत्र लेकर श्रीराधावल्लभी सम्प्रदाय चलाई थी। यह बात मिश्रबंधु-विनोद में भी लिखी हुई है और सब भावुक सम्प्रदाय वाले भी यही मानते हैं। इस सम्प्रदाय में यही विशेषता है कि श्रीहरिवंश जी के समय से ही श्रीकृष्णजी की मूर्ति के साथ श्रीराधिकाजी की गादी स्थापित करके स्वकीया भाव से सेवा पूजा की जाती है। श्रीराधावल्लभी अनन्य उत्कट भाव से भरे हुए विधि निषेध को नहीं मानते हैं। और यही साक्षी नाभा जी ने अपनी भक्तमाल में दी है।

श्रीगोपाल भट्ट जी आज कल श्रीमध्वाध्व गौड़ सम्प्रदाय में माने जाते हैं। उस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण जी की एक ओर श्रीराधिका जी और दूसरी ओर चंद्रावली जी की प्रतिमा पधरा के सेवा पूजा परकीया भाव से की जाती है। पर श्रीगोपाल भट्ट जी के ठाकुर श्रीराधारमण जी जो आजकल दर्शन दे रहे हैं। वे श्रीराधावल्लभियों की न्याईं गादी सेवा लिये हुऐ हैं। कदाचित इसी सम्प्रदाय विरोधी सिद्धांत को देखकर कोई २

मनुष्य श्रीराधावल्लभी सम्प्रदाय का आभास कुछ २ इस गौड़िया सम्प्रदाय में पाते हों अथवा उधर श्रीराधावल्लभी ग्रंथों के सिवाय गौड़िया भगवंत मुदित की भक्तमाल में भी जो यह लिखा हुआ है कि गुरु परंपरा से श्रीगोपाल भट्ट जी श्रीराधावल्लभी ही थे । बस ! इन्हीं कारणों से वर्तमान श्री मध्वमाध्व गौड़ सम्प्रदाई श्रीगोपाल भट्ट जी के अनुयाईयों ने अपनी साख जमाने को यह गुरु चेला बनाने की चाल थोड़े ही दिन से चलाई है।

यद्यपि इस गुरु चेला बनाने की नवीनता ने आज कल बड़ा भयंकर रूप धारण किया है किन्तु प्रबल प्रमाण के आगे यह बिचारी नीचा ही देखती है। इस हठीले साहस को देख कर बड़े दुःख से कहना पड़ता है कि "श्रीहरिवंश जी श्रीगोपाल भट्ट जी के शिष्य थे" इस विषय का जब श्रीगोपाल भट्ट जी के ही यहां कोई दो सौ चार सौ वर्ष का ग्रंथ नहीं है तो किस आधार पर उनके अनुयाई यह धींगाधींगी करते हैं । और साहित्य सेवी भी उसे प्रमाण मान लेते हैं।

सब से प्रथम इस झगड़े की जड़ को नवीनता की भूमि में परलोकवासी गोस्वामी श्रीराधाचरणजी ने स्थापित की थी । आप ने "श्री चैतन्य चरित सार" ग्रंथ में विना किसी आधार के यह लिख दिया था कि "श्री हरिवंश जी श्री गोपाल भट्ट जी के शिष्य थे" किन्तु

जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई तो श्री राधावल्लभियों को यह मिथ्या कथन सहन नहीं हुआ। उन्हों ने प्रमाण के साथ आंदोलन आरंभ किया। गोस्वामी जी पक्षपात रहित पुरुष थे। जब अपने अनुमानी लेख का उन्हीं ने बुरा परिणाम देखा तो तारीख ५ अकटूबर सन् १८८८ को ५) रु० दंड देकर सबइन्सपेक्टर लाला परशादी लाल जी साहेब पुलिस स्टेशन वृन्दावन के सामने मांफी मांग ली। और पंचों में यह स्पष्ट कह दिया कि मैंने जो कुछ श्रीहरिवंशजी के विषय में लिखा था वह निराधार और मिथ्या है। इस बात के छपे हुए विज्ञापन सर्वत्र बांटे गये थे।

दूसरे झगड़े की जड़ एक बङ्गला भक्तमाल बङ्गवासी प्रेस बङ्गला सन् १३१२ की छपी हुई में एक बङ्गाली सज्जन ने लगाई है। श्रीराधावल्लभियों के दो दो सौ तीन तीन सौ वर्ष के ग्रंथों में तो लिखा हुआ है कि श्रीप्रबोधानंद जी श्री हरिवंश जी के शिष्य थे और गोपाल भट्ट जी प्रबोधानंद जी के। पर फिर प्रबोधानंद जी कैसे श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के शिष्य हुए या वे कोई और ही प्रबोधानंद और गोपाल भट्ट जी थे यह तो कुछ नहीं लिखा किन्तु श्री नाभा जी की भक्तमाल के आधार पर अपनी भक्तमाल लिखते हुए उन्हों ने श्रीहरिवंश जी को ही श्री गोपाल भट्ट जी के शिष्य बना डाला। इस शिष्य

वना देने की धुन में वे वङ्गाली सज्जन ऐसे मग्न हुए है कि कहां तो नाभा जी की भक्तमाल के आधार पर अपनी भक्तमाल लिख रहे थे और कहां उनके हृदय में इतनी ईर्षा धधक उठी कि श्रीहरिवंश जी के विषय में श्री नाभाजी की कही हुई एक भी बात न कह कर नीचा दिखाने को उनके प्रति एक दो बातें मन गढ़न्त ही लिख दी हैं।

वङ्गालियों में यह प्रमाद बहुत दिन से आया है और आजकल बंगला पत्रों में भी यही शैली जारी है कि भारत में जो कोई उच्च श्रेणी के विद्वान, श्रीमान और वीर आदि हो गये हैं। वे या तो वङ्गाली थे या बंगालियों से शिक्षा पाये हुए थे। हम ने वङ्गला पत्रों में प्रायः यह देखा है। इसी धुन में कालीदास बंगाली वनाये गये हैं और सिक्ख गुरु गोविन्द सिंह जी बंगाली कहे गये हैं।

इधर हम इतने आत्मबलहीन होगये हैं कि उनकी ही कही हुई बातों को प्रमाण मान अपने पूर्वजों का कुछ भी स्मर्ण नहीं करते हैं। हम मुर्दे से तो दस बीस पहिले का ही समय अच्छा था कि जब लोग अपना आत्मवल दिखाने में पीछे नहीं हटते थे।

जिस समय उक्त बंगला भक्तमाल ने बंगवासी प्रेस का मुंह देखा और श्रीहरिवंशजी श्रीगोपालभट्टजी

के शिष्य निराधार बनाये गये और यह बात हिन्दी के ज्ञाताओं ने बंगला भक्तमाल में पढ़ी तो उस समय हिन्दी वालों में आत्मबल था इसलिये आन्दोलन आरम्भ हुआ। और ग्रन्थ प्रकाशक "अनुसंधान" संपादक श्री दुर्गादास जी लाहड़ी को यह बात बताई गई कि यह गुरु को शिष्य और शिष्य को गुरु बना देना निरी मिथ्या बात है। किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में इसका प्रमाण नहीं है। तब उन्होंने न्याय का पक्ष ग्रहण करके उसी भक्तमाल में जो छप चुकी थी और भीतरी अंश अब नहीं निकल सक्ता था इसलिये आदि में तीन पृष्ट का "संपादकेर निवेदन" लगा दिया। जिसका सारांश इस प्रकार है कि—

(निवेदन में इसी विषय सम्बन्धी १२ पंक्ति के पश्चात)
"श्री भक्तमाल ग्रंथेर २४१ पृष्टाय तहां सन्निविष्ट आछे। इहां ते श्री मन श्रीहितहरिवंशजी गोस्वामी महोदय के श्रीगोपालभट्टजीर शिष्य बलिया कथित हईयाछे एवं एकादशी तिथि ते तांबूल भक्षण हेतु तहा के अपराधी करा हईयाछे। किन्तु इहा संपूर्ण भ्रम मूलक सिद्धांत। उक्त गोस्वामी जी महोदय श्री मनृगोपाल भट्टजीर शिष्य नहेन। एवं तिनि ये एकादशी दिने ताबूल भक्षणे अपराधी हइयाछिलेन, तहार किच्छु मात्र प्रमाण नाई। (नाभा जी का मूल और प्रियादास जी की टीका एक पृष्ट में देकर फिर आगे लिखा है कि—)

१७६१ संवत् प्राय: १८४ वर्ष पूर्व रचित एवं १७८२ संवत्सरेर हस्त लिखित पूंथी हइते उक्त पाठ उद्धृत हइल।
—(भक्तमाल की सब टीका और प्रकाशित प्रेसों के नाम देकर लिखा है कि)—भक्तमाल ग्रंथ, भक्त कल्पद्रुम, रास रसिकावली, संस्कृत भक्तमाल एवं कवि हरिश्चन्द्र रचित वैष्णव सर्वस्व प्रभृति ग्रंथ आलोचना करिया आमरा देखिलाम कोन ग्रंथेइ बांगला श्री भक्तमाल ग्रंथेर न्याय पाठ विपर्य्यय घटे नाइ।"

तीसरी झगड़े की जड़ अभी कुछ दिन हुए श्री गोपाल भट्ट जी के एक अनुयाई ने यह कहकर लगाई थी कि "हमारे पिता ऐसा कहते थे "किन्तु इस मूर्खता का जो कुछ परिणाम हुआ है वह श्री भगवान ही जानते हैं। हम ऐसी विवादी बातों को कहकर साहित्य को गंदा नहीं किया चाहते हैं।

चौथी एक झगड़े की जड़ "सज्जन तोषिणी" बंगला मासिक पत्रिका में अभी हाल एक बंगाली सज्जन ने जमाई है। उसमें उसी पीसे को पीसा है। जो बङ्गला भक्तमाल में लिखा हुआ है। हम नहीं समझते कि क्यों सज्जन तोषणी में एक बङ्गाली सज्जन के तोष कर देने पर भी क्यों ऐसी प्रबल ज्वाला निकलती है? 'तोषणी' के उदार लेखक यदि चाहें तो बङ्गला भक्तमाल के निवेदन को पढ़कर अपना भ्रम दूर कर सके हैं। यदि

"तू ने सौ कहो मैं एक नहीं मानता" यही आपका सिद्धांत है तो ऐसी तोषणी को दूर ही से नमस्कार है और सज्जन को पुरस्कार है।

ऐसे और भी अनेक प्रकार के झगड़े हैं जिनसे चेले गुरु और गुरु चेले बनाये जा सक्ते हैं पर ऐसे विवादी विषय को बढ़ाकर हम किसी भी संप्रदाय के चित्त को नहीं दुखाया चाहते हैं इस स्थान पर तो केवल हमने धर्म्मान्धता को छोड़ कर साहित्य दृष्टि से एक ऐतिहासिक ग्रंथ को शुद्ध करने के लियेही यह विषय उठाया है। हम आशा करते हैं कि मिश्रबंधु सज्जन इन फैसलों और प्राचीन प्रमाणों को पढ़कर मिश्र कुल में उत्पन्न होने के कारण "व्यास मिश्र के लाड़िले" श्री हरिवंश जी पर जो यह बङ्गालियों का अनर्गल मिथ्या प्रलाप हुआ था और एक बङ्गाली सज्जन ने ही उसका निराकरण किया था उसका विचार करके इस श्री गोपाल भट्ट जी के प्रसंग को अपने हिन्दी साहित्य विषयक ऐतिहासिक ग्रंथों में से निकाल देने की कृपा करेंगे।

श्री हितहरिवंश जी के ग्रन्थ में भूल।

विनोद में श्रीहित हरिवंशजी श्रीमद्राधासुधानिधि, श्रीमत्चतुरासी जी और कैटलागस कैटेला गोरम के अनुसार कर्णानंद काव्य के भी कर्ता माने गये हैं। पर

पहिले दो ग्रंथों को छोड़ कर तीसरा कर्णानंद काव्य तो इस संप्रदाय में खोज से भी नहीं मिलता है। हां! श्री हरिवंश जी के पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कर्णानंद काव्य बनाया है और कठिनता के कारण स्वयं उसकी टीका भी कर दी है। इसीको कदाचित भूल से कैटोलागस केटेला गोरम के कर्ता इंगरेज महोदय ने कर्णानंद काव्य कहके श्री हरिवंश जी का नाम लिख दिया होगा। श्री हरिवंश जी ने कर्णानन्द काव्य तो नहीं किन्तु "स्फुट पद" कहे हैं और यदि वे पुस्तका कार मिलने से ग्रंथ के रूप में माने जावेंगे तो वे "स्फुटपद" ही कहे जा सते हैं। वहुत प्राचीन काल से श्री हरिवंश जी की श्रीमद्राधासुधानिधि; श्रीमत्चतुरासीजी और स्फुट पद यही तीनों ग्रंथ प्राप्त होते आये हैं और इन तीनों परही संस्कृत और भाषा के वड़े २ विद्वनों की सात २ आठ २ टीकायें भी हैं। इससें येही श्री हरिवंश जी के तीन ग्रंथ कहे जायंगे।

विनोद में इष्टदेव का भ्रम।

विनोद के २५४ पृष्ट में लिखा हुआ है कि "श्री हरिवंश जी ने श्री राधा वल्लभी संप्रदाय चलाकर श्री राधारमणजी ठाकुर पधराये" यह बात प्रत्यक्ष दर्शी सज्जन को इतनी हास्यास्पद जान पड़ती है कि कुछ

कहा नहीं जाता है। जो आचार्य श्री राधावल्लभी संप्रदाय चलाते हैं वे श्रीराधावल्लभ जी को छोड़ कर कैसे श्री राधारमण जी ठाकुर पधरा सक्ते हैं। जो सज्जन श्री वृन्दावन गये हैं उन्हों ने प्रत्यक्ष दोनों ठाकुरों के जुदे २ दर्शन किये होंगे और मन्दिरों में यह सुना होगा कि—

श्री राधावल्लभ श्री हरिवंश, श्री वृन्दावन श्री वनचंद्र।

—(*)—

श्री राधारमण भट्ट गोपाल, जय वृन्दावन जय नंदलाल॥

तो प्रत्यक्ष और प्राचीन प्रमाण से श्री हरिवंशजी के द्वारा श्री राधावल्लभ जी का ही पधराना ठीक जान पड़ता है। श्री राधा रमण जी का नहीं। और यदि हठ से यही बात मान ली जावे तो फिर वही गुरू शिष्य का झगड़ा सामने आता है। इससे ऐतिहासिक ग्रंथ से यह विषय निकल जानाही ठीक है। जो जिसके ठाकुर आजकल कहाते हैं वही लिख देना विनोद की शोभा होगी।

विनोद में श्री हरिवंश जी सम्बन्धी और भी भ्रम।

(१) विनोद में ग्रन्थकार ने श्री हरिवंश जी का काव्य काल १५८२ माना है किन्तु उनके प्राचीन चरित्र ग्रन्थों में लिखा हुआ है कि—"गतेष षष्ठे मासे सुधासिन्धु

प्रवर्त्तंच" इससे सिद्ध होता है कि उपर्युक्त हमारे निश्चय किये हुए १५३० में ही उनका काव्य काल आरंभ हो गया था। यह खयाली बात नहीं है किन्तु प्रमाणिक और प्राचीन ग्रन्थों में लिखी हुई है। अब इतने पर भी असंभवता आके बाधा देवे तो जो सज्जन पांच २ छे २ वर्षों के जापनी और इङ्गरेज बालकों की प्रखर बुद्धि का परिचय पाके उसपर विश्वास करते हैं। उन्हें अपने प्राचीन महानुभाव का १५२६ तो काव्य काल माननाही पड़ैगा।

इस अशुद्धि को शुद्ध कर देने से ग्रंथकार सज्जन को और भी एक सुभीता होसक्ता है कि अलि भगवान जी के विषय में जो यह अनुमान लगाकर विनोद में लिखागया है कि—"१५४० में श्री हरिवंश जी से प्रथम उत्पन्न हुए थे किन्तु सिद्धांत मिलने से ये श्री हित संप्रदाय में सान्न लिये गये" सो श्रीहरिवंशजी का १५३० जन्म काल और १५२६ काव्यकाल जो यथार्थ में सत्य है मान लेंगे से यह हास्यास्पद बात भी इस ऐतिहासिक ग्रंथ में से निकाली जा सक्ती है। क्योंकि आचार्य के उत्पन्न हुए विना संप्रदाय नहीं चल सक्ती है। यह प्रत्यक्ष बात है।

(२) विनोद में श्री हरिवंश जी की संतान दो पुत्र और एक कन्या बताई गई हैं पर कन्या को छोड़कर चार पुत्र का होना तो श्री राधावल्लभी संप्रदाय के वैष्णव

अपने यहाँ कि धुनि में नित्य प्रति अब भी गाया करते हैं।

श्री वननन्द श्री कृष्णचन्द्र श्री गोपीनाथ श्री मोहन।
नादविन्द परवार रंगीली हित सों नित छवि जोहन॥

और प्राचीन ग्रंथों में भी यही चार पुत्र होना लिखा हुआ है। इससे सिद्ध होता है कि विनोद में जैसी और बातें श्री हरिवंश जी के सम्बन्ध में अनुमान से कह दी गई हैं। वैसी दो पुत्र का होना लिख देना भी एक अनुमानी बात है। इसका भी शोधन होजाना परमावश्यक है।

उपर्युक्त पद की पत्रिका में श्री हरिवंश जी के दो परिकर वर्णन किये गये हैं। विंद खास वंश और नाद शिष्य। इनकी परीक्षा भी काव्य में सहज ही इस प्रकार की जा सक्ती है कि जो विन्द परिकर हैं वह पदों में अपने नाम के आगे "जयश्री" लगाके प्रायः पीछे "हित" लगाते आये हैं। जैसे "जय श्री गोपीनाथ हित" आदि। और जो नाद परिकर के हैं वे अपने नाम के आगे या पीछे "हित" शब्द लगाते आये हैं। केवल व्यास जी या और किसी महानुभाव ने प्रसंग वशात यह परिपाटी नहीं ग्रहण की है। और श्री वृन्दावन हित जी ने यह विशेषता ग्रहण की है कि अपना, आचारी का और गुरु का तीनों नाम एक साथही पदों में लगाते

आये हैं। जैसे "वृन्दावन हित रूप उरभि प्रेम गाढ़े फंद"

इस परिपाटी को न जानने से भी विनोद में कई एक अशुद्धियां केवल अनुमान के सहारे हो गई हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार है कि—

(३)—३२२ पृष्ट में सेवक जी श्री हरिवंश जी के पुत्र बताये गये हैं पर उपर्युक्त धुनि के चार पुत्रों में इनका कहीं नाम भी नहीं है। ये मध्य प्रदेश गढ़ा के रहने वाले थे। भक्तमालों में अच्छे प्रकार गाये गये श्री चत्रभुज स्वामी के मित्र थे। श्री हरिवंश जी के पुत्र नहीं किन्तु सेवक थे। और चत्रभुज स्वामी श्री हरिवंश जी के पुत्र के सेवक थे। श्री चत्रभुज स्वामी का वर्णन विनोद में कहीं भी नहीं है किन्तु उन्होंने द्वादश यश नाम के दो ग्रंथ संस्कृत और भाषा में बनाकर स्फुट कविता भी की है। इन दोनों महानुभावों का कविता काल १५७० या १५७५ मानना चाहिये।

(४) पृष्ट ४०२ में जो दामोदर व्रजवासी समय प्रवन्ध के कर्ता माने गये हैं उनके विषय में इतना और लिख देने की आवश्यकता है कि वे भी श्रीहित संप्रदाय में थे क्योंकि "दामोदर हित विलग न मानें" यह स्पष्ट उन्होंने अपने प्रत्येक पदों में कहा है।

(५) पृष्ट ३५८ में श्रीवनचन्द्र जी विनोद में दो पुत्र कहते हुए भी चौथे पुत्र कहे गये हैं पर वे सब से

बड़े प्रथम पुत्र थे। उनका जन्मकाल जो अनुमान से विनोद में लिखा गया है वह मिथ्या है। यथार्थ में १५५८ जो श्रीहरिवंश जी का जन्मकाल भूल से बताया गया है यही इनका जन्मकाल होगा। इनके जो वंशधर आज कल श्री वृन्दावन में श्रीराधावल्लभ जी की सेवा के अधिकारी हैं। श्रीगिरधरलाल जी महाराज भांसी वाले जो इनके वंशधर विनोद में बताये गये हैं सो वे इनके वंशधर नहीं हैं किन्तु श्री गोपीनाथ जी तृतीय पुत्र के वंशधर हैं।

(६) पृष्ट २५२ में श्री नागरी दास जी श्री हित सेवक के शिष्य विनोद में बताये गये हैं पर वे श्री हरिवंशजी के पुत्र के सेवक हैं। सेवक के सेवक नहीं और इनकी कविता का काल भी १५८० है।

(७) पृष्ट २५५ में गंगाबाई श्री हरिवंश जी की शिष्य बताई गई है पर उन्हीं के नीचे लिखी हुई यमुना बाई भी श्रीहरिवंशजी की शिष्य हैं क्योंकि "गंगा यमुना कामैठी अरु भागमती ये बाई" धुनि में स्पष्ट कहा गया है। इन दोनों का समय १६०० अशुद्ध है १५६८ लिखना चाहिये।

(८) पृष्ट ३५८ में श्रीहितरूपजी श्री हरिवंश जी के चेले के चेले बताये गये हैं पर वे श्री हरिवंश जी के नाती वृन्द परिकर में थे क्योंकि उन्होंने अपने नाम

के आगे उपर्युक्त परिपाटी के अनुसार "जय श्री रूपलाल हित ललित त्रिभंगी" स्पष्ट कहा है। और वे उन श्री वृन्दावन हित जी के गुरु थे जिनकी प्रशंसा विनोद के १४५ पृष्ठ में अच्छे प्रकार की गई है।

(९) पृष्ठ १४५ में जिन चाचा वृन्दाबन हित जी की मिश्र बन्धु सज्जनों ने श्री सूरदास जी की जोड़ के कवि बता कर बड़ी भारी प्रशंसा की है उनकी कविता काल १८०० ठीक नहीं जान पड़ता है क्योंकि १८००से कुछ पीछे तो बड़ी उमर में उनका निकुञ्ज वासही सुना जाता है। इससे १५७० संवत् लिखा जावे तो शुद्ध हो सक्ता है। ४ लच पद सुने गये हैं और एक ग्रंथ लाड़सागर, बेली आदि हमने भी इतने बड़े देखे हैं कि उन प्रत्येक की पूर्ति वर्त्तमान सूरसागर के समान कही जा सक्ती है। ब्रज के रास धारियों में छद्म की लीला दरसाने वाले आपही प्रथम कवि हुए हैं।

अन्य एक प्रत्यक्ष अशुद्धि।

(१०) श्री हरिदास स्वामी के विषय में विनोद में लिखा हुआ है कि "वे पहिले श्रीवृन्दावन में रहते थे और फिर श्रीनिधुवन में" जिन्हों ने श्री वृन्दावन के दर्शन किये हैं वे कह सक्ते हैं कि निधुवन कोई एक दूसरा स्थान नहीं है। किन्तु श्री वृन्दावन के बीचों बीच

यह परकोटे से घिरी हुई एक छोटी सी कुंज है । इसमें "श्रीहरिवंशजी वृन्दावन की निधुवन कुंज में रहते थे यह लिख देना ही ठीक है क्योंकि दो स्थान जुदे २ बताना यह प्रत्यक्ष दर्शी के लिये इस ऐतिहासिक ग्रंथ में बड़ा ही हास्यास्पद विषय है ।

मिश्रबंधुओं का बंधुत्व ।

यद्यपि ना समझी से आजकल देशी चिड़िया विलायती बोल बोलने लगी है । जूही, गुलाब, केवड़ा आदि सुगंधित पुष्प होने वाले भारत वर्ष में ज़बर्दस्ती गार्डन आदि विलायती पौधों की खेती की जा रही है पर मिश्र बंधु विनोद में यही विशेषता है कि जातीयता के अभिमान को ले करके इसमें तल्लीनता और भावुकता को बहुत ऊंचा आदर दिया गया है । इसलिये ग्रंथकार सज्जनों को सहस्रशः धन्यवाद है ।

विनोद में श्रीहरिवंशजी के सम्बन्ध में जो विषय आये हैं और उनमें जो भ्रांति दीख पड़ी है अभी केवल वही हमने अपने उपर्युक्त लेख में प्राचीन प्रमाणों को लेकर के वर्णन की है । आगे समयानुसार और भी अन्य विषयों पर हमारा लिखने का विचार है । अब केवल इस लेख के सम्बन्ध में अन्तिम निवेदन यही है कि मिश्र बंधु सज्जनों ने जो इस ग्रंथ में कवियों को प्राकृतिक

प्रचलित भाषा, खड़ी बोली के पद्य और प्राचीन आधुनिक गद्य इन तीन भागों में बांटकर जहां तहां से खोजने का परिश्रम किया है । यह सराहने की बात है । किन्तु प्रौढ़ माध्यमिक काल में यदि श्रीहित संप्रदाय की और भी अच्छी प्रकार खोज की जाती तो उन्हें यह तीनों साहित्य एक ही स्थान पर मिल सक्ते थे । स्वधर्मबोधिनी में श्रीहरिवंशजी के स्वयं दो पत्र गद्य में हैं । जिन श्रीवृन्दावन हित को विनोद कार ने सूरदास जी के बराबर बताया है । उन्हों ने गद्य में श्रीमद्राधासुधानिधि की बड़ी भारी टीका की है । प्रियादास जी ने स्फुटपद का बड़ी पंडताई से अर्थ किया है । श्रीमतचतुरासीजी पर बहुत पुरानी सात आठ टीकाएं गद्य में है । योंहीं सैकड़ों ग्रंथ इस संप्रदाय में गद्य के हैं । व्रज भाषा का तो इतना बड़ा पद्य भंडार इस घर में पाया जाता है कि यदि कोई मात्रि भाषा भक्त पूज्य भाव से इनको एकत्र करे तो दो एक महाभारत के समान पूर्ति हो सक्ती है । खड़ी बोली के पद्य आज कल ही नहीं प्रचलित हुए हैं। इनका प्रचार बहुत प्राचीन समय से है । वे भी यदि खोज किये जावें तो इस संप्रदाय में बहुत प्राचीन हजारों मिल सक्ते हैं । जिनमें से मोहनमत्त जी की निरुया पद्धति का नमूना यह है कि—

सांझ।

आप न धारें गिरा उचारें उससे प्यारा तोता।
धूर पड़े उसके पढ़ने में जनम लिया जग थोता॥
मुरदे के मानिंद पड़ा वह जग ज्वाला में सोता।
मोहनमत्त मार जल्दी अब व्यास सुवन पद गोता॥

खोज में बाधाएँ।

आज कल संप्रदायों में अहंकार और मत्सरता के कारण बड़े २ द्रोह उत्पन्न हो गये हैं। पुराने विद्वान लोग भी रूढ़ी में बंधे हुए चौके से बाहर पांव पड़ जाना पाप समझते हैं। ये यह नहीं समझते कि पाप और अनाचार दोनों ही भिन्न २ वस्तु हैं। अन्ध रूढ़ी वाले निरक्षर गुरु चेले "जय २ महाराज" और "वाह भइया जी" ही में संप्रदाय की इति श्री समझते हैं। कोई भी श्री भगवान के वाक्यानुसार "देशे काले च पात्रे च" का व्यवहार नहीं करते हैं। इसी से उनके पूर्वजों की साहित्य संपत्ति नष्ट हो रही है और वे दुनियां के सामने तर्कों के द्वारा नीचे देखते हैं। साहित्य ने ही इन संप्रदायों का मुख उज्वल किया था। आज वही सूर्य धर्मान्धता के जाल में छिपा हुआ है। इसी से कोई भी संप्रदाई अपने साहित्य की ऐसी सूची न बना सके कि जिससे उनके घर के साहित्य का पूरा२

पता लग जाता। और न कोई २ संप्रदाई अपने आचार्य्य का साहित्य दृष्टि से ऐसा चरित्र भी लिख सके हैं कि जिस से हिन्दी साहित्य सेवियों को उनकी विशेषताओं का पता लग जाता। हा! इसके विरुद्ध आज काल संप्रदायों में यह अवश्य हो रहा है कि खोजियों के पूछने पर ग्रंथ छिपाये जाते हैं। दीवारों में चुन दिये जाते हैं। और जो संप्रदाई संप्रदाय की विशेषता दरसाने को आगे बढ़ता है तो उसको टांगें पकड़ के पीछे खींची जाती हैं और दो धक्के दिये जाते हैं।

इधर जिनकी संपत्ति हैं उनकी तो यह दशा है। उधर जो खोजी हैं वे नये आडम्बर से निंदा और तर्क के साथ केवल संप्रदायों को नीचा दिखाने के लिये साहित्य क्षेत्र में आते हैं। इससे नास्तिक और निंदक कहा कर वे प्राचीन साहित्य से वंचित रहते हैं।

ऐसी दशामें अब सच्चे हिन्दी साहित्य सेवियों को योग्य है कि इस असमंजस के काल में यदि संप्रदाई साहित्य ढूंढ़ के निकालना है तो उन्हीं पादरी साहिब की अबुल फ़ज़्ल की नीति का अवलंबन करना चाहिये कि जिन्होंनें अनादर होते हुए भी सब से प्रथम पूज्य दृष्टि से छद्म भेष धारण करके संस्कृत साहित्य जान लेने का परिश्रम किया था क्योंकि धर्म्मान्ध और अपढ़ दृष्टि से

अब इस गुप्त साहित्य के उद्धार की कोई आशा नहीं है। यह मातृ भाषा का ऋण तो अब हर प्रकार से आप को ही चुकाना पड़ेगा।

(विनम्र विनिवेदन इति)

॥ श्रीराधावल्लभो जयति ॥

श्रीहित ग्रन्थमाला।

श्रीराधावल्लभीय संप्रदाय में यह बात सबपर सुविदित है कि जितने संस्कृत और व्रजभाषा गद्य पद्य के ग्रंथ इस सम्प्रदाय में उपस्थित हैं उतने और किसी भी दूसरी वैष्णव सम्प्रदाय में नहीं हैं. एक श्रीवृन्दावनदासजी गोस्वामि महाराज की ही बाबत यह प्रसिद्ध है, कि उन्होंने कई लाख पद बनाये हैं। श्रीध्रुवदासजी की ब्यालीस लीला और श्रीचतुर्भुज स्वामि के द्वादश यश को कौन नहीं जानता है? योंही प्रायः एक सहस्र से अधिक ग्रन्थ रत्न अपनी सम्प्रदाय में, घर घर लिखे धरे हैं। उनमें से सातसौ ७०० चुने हुये ग्रन्थ तो हम लोगों के पास सब प्रकार छपने के उपयुक्त तैय्यार हैं।

इन्हीं सब ग्रन्थों की सुन्दर और शुद्ध छपाई करने के लिये हम लोगों ने उक्त "श्रीहितग्रंथमाला" प्रकाशित करना निश्चय किया है। प्रथम पुष्प "श्रीहितचरित्र" प्रकाशित हो चुका है, दूसरा "भ्रमोच्छेदन" यह है, जो आर्डर आतेही ग्राहकों के पास भेज दिया जा रहा है। तीसरा 'श्रीयमुनाष्टक' और चौथा गोस्वामि श्रीकृष्णदास जी महाराज विरचित 'अष्टपदी' यन्त्रस्थ हैं. जो श्रीहितोत्सव तक औरडर आने पर ग्राहकों के पास पंहुंच जायेंगे। इस प्रकार प्रत्येक महीना में एक या दो ग्रंथ या इससे भी अधिक प्रकाशित करने का विचार है। आगे श्रीहितमहाप्रभूजी की मरजी।

आशा की जाती है कि छोटे २ ग्रन्थ शीघ्र २ और अधिक संख्यक और बड़े बड़े ग्रन्थ कुछ विलम्ब से और परिमित संख्या में प्रकाशित होते रहेंगे।

'श्रीहितग्रन्थमाला' के ग्राहकों को चाहिए कि वे एक २ पोष्टकार्ड भेजकर अपने अपने नाम ग्रन्थमाला के ग्राहक रजिष्टर में मुन्दर्ज करालें, तो जब जब ग्रन्थ प्रकाशित होंगे तभी तभी उनके पास वी० पी० पोष्ट से रवाने कर दिये जांयगे।

ग्रन्थमाला के मूल्य के सम्बन्ध में हमारा यह कहना है कि जो ग्रन्थ जैसा होगा, उसका वैसाही मूल्य भी होगा। सिर्फ, छपाई और कागज का ठीक दाम लेकर ही हम लोग ग्रन्थमाला का भारत भर में प्रचार करना चाहते हैं। इस 'ग्रन्थमाला' से हम लोग किसी प्रकार भी निजका कोई लाभ नहीं उठाना चाहकर केवल मात्र यही पवित्र सदिच्छा रखते हैं कि इसके सम्यक प्रचार से तदीय जनों का प्रभूत उपकार हो और उसी उपकार की सुदुर्लभ सत्कीर्ति के समर्जन से हम लोगों का गोस्वामि नाम और जन्म सफल हो। इस लिये हम लोग इस 'ग्रन्थमाला' के किसी भी छोटे या बड़े ग्रन्थ का मूल्य लागत से कुछ भी अधिक नहीं रक्खेंगे, पर तो भी ग्राहकों की जानकारी के लिये प्रकाशित होनेंवाली प्रत्येक पुस्तक का आकार प्रकार, और मूल्य 'प्रेमपुष्प' द्वारा अथवा स्वतंत्र विज्ञापन पत्र द्वारा प्रकाशित होनें से प्रथमही प्रगट कर दिया करेंगे।

इस ग्रन्थमाला के धनी मानी और ख़ासकर दृढ़ रसिक अनन्य धर्म धनवान हित सेवकों के लिये हम लोगों ने यह एक और भी सुभीता सोचा है कि—

जो ग्राहक हम लोगों की "काग़ज़ की अपील" में एक मुश्त ५००) पांचसौ रुपे या उससें अधिक प्रदान करेंगे, उनका नाम दानियों की नामावली में तो सदा देदीप्यमान रहेहीगा अधिकन्तु उनके पास इस प्रस्तावित "श्रीहितग्रंथ-माला" के सभी (अर्थात् ७०० सातसौही) ग्रन्थ विना मूल्य और विना मासूलही क्रमशः प्रेरण कर दिये जांयगे, कभी उनसें किसी प्रकार का कोई मूल्य या मासूल नहीं लिया जायगा ; अधिकन्तु प्रेमपुष्प भी आजन्म उनके पास विना मूल्य और विना मासूलही जाया करेगा ।

गोस्वामि ब्रदर्स ।
१३ महेन्द्रबोस लेन बागबाजार कलकत्ता ।

श्रीमहाप्रसाद महिमा ।

प्रसाद माहात्म्य सम्बन्धी इतना सप्रमाण ग्रन्थ और कहीं भी नहीं है, केवल हमलोगों के पास ही है, शीघ्र मगाकर देखिये—दाम ।) चार आने । डांकव्यय स्वतन्त्र ।

प्राप्ति स्थान—

गोस्वामी ब्रदर्स,
१३, महेन्द्र बोस लेन पो० बागबाजार कलकत्ता ।

"दृढ़ रसिक अनन्य वैष्णव धर्म्म"

लीजिये = जिस ग्रन्थ के लिये इतने दिनों से इतनी इतनी चरचा हो रही थी, जिसको देखने के लिये आज लाख लाख वैष्णव उद्ग्रीव हो रहे थे, जिसको जानने के लिये प्रत्येक वैष्णव व्याकुल हो नहीं, अधीर भी हो रहे थे; वैष्णवों का प्यारा, भगवान् श्रीकृष्ण का दुलारा और वैष्णव संसार के अन्धेरे घर का सुप्रकाश रूप वही "दृढ़ रसिक अनन्य वैष्णव धर्म्म" ग्रन्थ रत्न अब छप कर तैयार है। यह ग्रन्थ-वीर वैष्णवों का नारायणास्त्र, वैष्णव शास्त्र का मूल सूत्र और दृढ़ अनन्य धर्म का अजेय पृष्ट पोषक है। सब सम्प्रदाय के वैष्णवों को इसे अवश्य अवलोकन करना चाहिये। श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय के वैष्णवों का काम तो इसके बिना चल ही नहीं सकता। सुन्दर सफेद और चिकने कागज़ के १६० पेजों पर अति सुन्दर टाइपों में अत्यन्त साफ छपे हुए बिना जिल्द के ग्रन्थ का दाम ॥) आठ आना और खूबसूरत स्वर्णाक्षर शृङ्गारित कपड़े की जिल्द वाले ग्रन्थ का दाम ॥।) बारह आना है। डांक व्यय स्वतन्त्र। इकट्ठे खरीददारों को कमीशन भी मिलेगा। शीघ्र मगाइये—

प्राप्तिस्थान :—गोस्वामी ब्रदर्स।
१३, महेन्द्र बोस लेन, बागबाज़ार
कलकत्ता।

गोस्वामि ब्रदर्स।

कमीशन एजेण्ट, ऑर्डर सप्लायर

और

जनरल मरचेण्ट्स

एजेन्सी

१३ महेन्द्रबोसलेन बागबाज़ार कलकत्ता।

सर्वसाधारण को सुविदित हो कि हमलोगों की उक्त कम्पनी कलकत्ते में अनेक वर्षों से सत्यता, सुलभता, सुन्दरता, और तत्परता के साथ काम कर रही है। हम लोग हर किस्म का कलकत्ते का माल बाहर और बाहर का माल कलकत्ते में उचित दाम, उचित कमीशन और उचित डांकखर्च या रेल मासूल लेकर बेचा और खरीदा करते हैं। सबसे कार्य्य की परीक्षा प्रार्थनीय है। श्री-राधावल्लभीय आचार्य्य गोस्वामि स्वरूप और बड़े २ सेठ साहूकार और अनन्य वैष्णव सेवकों से तो पूरी आशा है कि वे अवश्यही अपनी उक्त कम्पनी से ही अपना व्यापारिक व्यवहार करेंगे। गोस्वामि ब्रदर्स का फार्म लाख लाख रुपयों की जमानत का फ़ार्म है।

विनम्र विनिवेदक—

मनेजर गोस्वामि ब्रदर्स।